विषय-सूची

क्रम सख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ सख्या
१	वेदोपदेश	सम्पादक	१
२	माननीया श्रीमती शाह जी द्वारा कार्यशाला के उद्घाटनावसर पर दिया गया भाषण		२
३	आर्य समाज और राजनीति	ले०–डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	७
४	राष्ट्रभाषा सम्मेलन या अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन ?	ले०–डॉ० वेदप्रताप वैदिक	१६
५	सृष्टि जब तक है अमर हो तुम तुम्हारे गान तुलसी !	ले०–डॉ० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी एम०ए०, पी-एच०डी०, डी० लिट०	२४
६	वैदिक धर्म की विशेषता	ले०–डॉ० हरिदत्त पालीवाल 'निर्भय' पी-एच०डी०	२८
७	मृत्यु के कालदूत पृथ्वी पर आये	ले०–डा० रामचरण महेन्द्र, पी०-एच०डी०	३७
८	वैदिक संस्कृति और मोक्ष	ले० श्री डा० मुशीराम जी शर्मा, डी० लिट० ६/७० आर्यनगर, कानपुर	४४
९	आर्यसमाज एक शताब्दी की उपलब्धिया	ले०–डॉ० भवानी लाल भारतीय एम०ए०, पी–एच०डी०	५२
१०	वैदीक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला की प्रमुख सस्तुतिया —		६१
११	नदी का दर्प	कुमार हिन्दी	६७
१२	विश्वविद्यालय मे इटली के हिन्दी-विद्वान का आगमन		६८
१३	इस विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष का सम्मान	सहायक सम्पादक	६९
१४	सम्पादकीय वक्तव्य	सम्पादक	७०

प्रह्लाद

(त्रैमासिक पत्रिका)

[वर्ष—१९८२ (सितम्बर से दिसम्बर तक) अंक—२]

वेदोपदेश

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा।
इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥

(ऋग्वेद/४/८/२८/८)

(जो मनुष्य परोपकार करने की इच्छा करते है वे ही सत्पुरुष होते है)

ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः।

दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृलता च देवाः ॥

(ऋग्वेद/६/५/५०/११)

(हे विद्वानो ! तुम निरतर प्राप्त होने योग्य विद्या और धनो को प्राप्त होकर सब मनुष्यो को सुखी करो)

प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नोभिरन्या अपसामपस्तमा।
रथ इव बृहती विम्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती।

(ऋग्वेद/६/५/६१/१३)

(हे मनुष्यो ! विद्या, सुशिक्षा, सत्सग, सत्यभाषरण और योगाभ्यासा दिलो से निस्पन्न हुई वाणी यह व्याप्त वा समर्थ है उसको तुम जानो)

वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला के उद्घाटन (४-६-८२) पर प्रेषित माननीया श्रीमती माधुरी शाह जी—अध्यक्ष, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग भारत सरकार का

भाषण

मान्यवर परिद्रष्टा महोदय, कुलाधिपति महोदय, कुलपति महोदय उपस्थित विद्वज्जन,

आपने गुरुकुल कॉंगडी विश्वविद्यालय मे आयोजित "वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला" के उदघाटन हेतु मुझे आमन्त्रित किया–इस सम्मान के लिए मै आपका आभारी हू।

भारत के नवजागरण के आन्दोलन मे ऋषि दयानन्द का स्थान अद्वितीय है। उनसे प्रेरणा लेकर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने आज से ८० वर्ष पहले एक नई आशा और नई स्फूर्ति से गगा नदी के तट पर गुरुकुल कागडी की स्थापना की थी। उस समय की शिक्षा पद्धति से वे सन्तुष्ट न थे। एक ओर विदेशी भाषा के माध्यम से पढे हुए युवक ब्रिटिश शासन के सचिवालयो मे नौकरी की खोज करते थे, दूसरी ओर प्राचीन शिक्षा स्थलो पर चल रही पाठशालाओ मे अध्ययन करते हुए विद्यार्थी आधुनिक ज्ञान विज्ञान से सर्वथा विमुख थे। अपने ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश मे ऋषि दयानन्द ने समग्र शिक्षा का जो मन्त्र प्रस्तुत किया था उसको मूर्त रूप देने हेतु महात्मा हसराज और उनके सहयोगियो ने १८८६ मे डी०ए०वी० कालेज लाहौर की स्थापना की थी, किन्तु स्वामी श्रद्धानन्द और प० गुरुदत्त डी०ए०वी० कालेज की उपलब्धियो से सन्तुष्ट नही थे। अत उन्होने गुरुकुल की स्थापना का बीडा उठाया, जिसमे कि भारतीय विदेशी दोनो शिक्षा पद्धतियो का समन्वय हो और दोनो के गुण ग्रहण करते हुए दोनो के दोषो से मुक्ति हो। गुरुकुल की प्रारम्भिक योजना मे

माननीया श्रीमती शाह जी अपरिहार्य कारणो से स्वय उपस्थित नही हो सकी तथा उनका उक्त भाषण उनकी अनुपस्थिति मे पढकर सुनाया गया—

—सम्पादक

वेद-वेदांग और सस्कृत साहित्य की शिक्षा के साथ-२ आधुनिक ज्ञान विज्ञान की शिक्षा को भी यथोचित स्थान दिया गया और शिक्षा का माध्यम राष्ट्रीय भाषा हिन्दी को रखा गया। गुरुकुल मे गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, तप, स्वाध्याय, स्वालम्बन और स्वदेशी का विशेष महत्व था।

आज जब चहू ओर से हमे शिक्षा सम्बन्धी समस्याओ ने घेर रखा है, वैदिक शिक्षा के आधारभूत मूल्यो पर गहन विचार करने की आवश्यकता है। आज देश मे १२० से अधिक विश्वविद्यालय है ४,५०० कालेज है ४०००० माध्यमिक पाठशालायें है और छ लाख प्राथमिक पाठशालायें है, उच्च शिक्षा के सस्थानो मे लगभग दो लाख अध्यापक काम कर रहे है। इक्कीस लाख विद्यार्थी उनमे अध्ययन कर रहे है। अढाई लाख विद्यार्थी स्नातकोत्तर सस्थानो मे अध्ययन कर रहे है। वैज्ञानिक जनशक्ति की सख्या के अनुसार हमारी गणना विश्व के राष्ट्रो मे तीसरे स्थान पर है। हमारे उच्चतम वैज्ञानिक विश्व के किसी भी राष्ट्र के वैज्ञानिको के समकक्ष खडे हो सकते है। लेकिन फिर भी देखा जाए तो वर्तमान शिक्षा प्रणाली हमारी सास्कृतिक परम्पराओ सामाजिक लक्ष्यो और आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे सफल नही हो पा रही। हमारे स्नातक-स्तर के कोर्स जो कि पुरानी पद्धति पर आधारित है देश की आधुनिक आवश्यकताओ को पूरा नही कर पा रहे।

यह ठीक है कि विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य विद्या का प्रसार और नए अनुसधान करके जगत् के रहस्यो का ज्ञान प्राप्त करना है। इस कार्य हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि विश्वविद्यालयो का वातावरण शुद्ध, शान्त और तपोमय हो, जिससे कि विद्योपार्जन और ज्ञान-विज्ञान के अनुसधान मे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो। लेकिन यदि हम यहो तक ही विश्वविद्यालय के लक्ष्य को सीमित कर दे तो जन साधारण के साथ यह एक बहुत भारी अन्याय होगा। आर्यसमाज का नवा नियम है, प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति मे अपनी उन्नति समझनी चाहिए। इस लक्ष्य की पूर्ति तभी हो सकती है यदि शिक्षा सस्थान अपने अडोस-पडोस मे जा कर निर्बल वर्ग की ओर ग्रामवासियो की जरुरतो, इच्छाओ, अभिलाषाओ, कमजोरियो और शक्तियो का अध्ययन करे और उनके साथ मिल-जुल कर अपनी शिक्षा का लाभ उनको देते हुए उनके स्तर को ऊचा करने की कोशिश करे। इससे एक ओर तो अध्यापको और विद्यार्थियो मे समाजसेवा की भावना उजागर होगी, दूसरी ओर यह भी जानकारी प्राप्त हो सकेगी कि हमारी शिक्षा मे क्या त्रुटीया है और हमारे पाठ्यक्रम को क्या मोड देना अभीष्ट है ?

इस सदर्भ में मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपके विश्वविद्यालय ने अपने मातृग्राम कागडी को सम्भाला है और बिजनौर के जिला अधिकारियो की सहायता से वहा ग्राम विकास का एक अभूतपूर्व कार्यक्रम शुरू किया गया है। मुझे बताया गया है कि इस वर्ष वहा ३०,००० शहतूत के पौधे और २,००० सुबबूल के पेड लगाने का कार्यक्रम है। इसके अतिरिक्त वहा एक बायोगैस प्लान्ट और पवनचक्की लगाने की योजना भी है जिससे कि घरो मे बिजली और पीने का पानी उपलब्ध होगा। कलैक्टर बिजनौर ने निर्बल-आवास, दुकानो के निर्माण, सडकों को पक्का करने और काम धन्धो को शुरू करने के लिए यथेष्ठ अनुदान और ऋण उपलब्ध कराने का आश्वासन भी दिया है। आशा है आपके सहयोग से ग्रामवासी इन योजनाओ से पूरा लाभ उठायेंगे।

इस बात को हमे स्पष्ट तौर पर समझ लेना चाहिए कि जो शिक्षा नैतिक मूल्यों के विकास की अवहेलना करती है उसे शिक्षा की सज्ञा नही दी जा सकती। नैतिक मूल्यो का विकास और मानव मे उच्चतम सस्कारो की प्रतिष्ठा किसी भी शिक्षा प्रणाली का आधार स्तम्भ है। यही गुरु शिष्य परम्परा का मुख्य ध्येय है। गुरु शिष्य को निकटस्थ करके उसकी रक्षा और शिक्षा-दीक्षा करता है, उसकी समस्याओ का निदान करता है "उसके समक्ष आदर्श जीवन के लक्ष्य उपस्थित करता है, जिससे कि ब्रह्मचारी सन्मर्ग मे प्रेरित हो और पापाचरण से बचे। जो धर्मयुक्त कार्य हो उनको ग्रहण करे। विद्वानो का सत्कार करे, माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा करे। आज देश को ऐसे ही गुरुकुलो की आवश्यकता है जहा चरित्रवान् और धर्मनिष्ठ गुरु ब्रह्मचारियो के सम्मुख आदर्श जीवन का उदाहरण उपस्थित करने मे सदा प्रयत्नशील हो। हमे ऐसे गुरुकुलो की आवश्यकता है जहा गुरुजन और ब्रह्मचारी सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्याग मे सर्वदा उद्यत हो, जहा सब काम धर्म के अनुसान अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके किए जाये, जहा का वातावरण परोपकार की भावना से ओत-प्रोत हो, जहा अविद्या के नाश और विद्या की वृद्धि हेतु अहर्निश यज्ञ रचे जाए।

सभी ओर से आवाज उठ रही है कि आज की शिक्षा-पद्धति से शिक्षित बेकारो की सख्या मे वृद्धि हो रही है। इसी हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने यह सुझाव प्रस्तुत किया है कि बहुत-सी सरकारी नौकरियो के लिए स्नातक की उपाधि की शर्त हटा दी जाए। जिस कार्य के लिए जिस गुण की आवश्यकता हो उसी गुण की परख करके नौकरीदाता प्रार्थी को

नौकरी प्रदान करे और यह गुण विश्वविद्यालय प्रणाली से बाहर भी प्राप्त किये जा सकते है। इसी हेतु विश्वविद्यालय अनुदान अयायोग ने महा-विद्यालयो मे प्रवेश के लिये निम्न छ: बिन्दु की नीति निर्धारित की है :

(क) किसी भी विभाग अथवा महाविद्यालय मे प्रवेश उस विभाग अथवा महाविद्यालय की क्षमता को दृष्टिगत रखते हुए योग्यता के आधार पर देना चाहिए।

(ख) नये विश्वविद्यालय, महाविद्यालय स्थानीय शैक्षणिक आवश्य-कताओ के सर्वेक्षण के पश्चात् केवल पिछडे इलाको मे ही खोले जाऐ।

(ग) माध्यमिक स्तर पर अर्थकरी विद्या का प्रबन्ध किया जाए,

(घ) स्नातक शिक्षा के पाठ्यक्रम मे समुचित सशोधन किया जाए। जिस से कि स्नातको को समाज की अर्थव्यवस्था मे उचित स्थान प्राप्त करने मे कठिनाई न हो।

(ड) पत्राचार के द्वारा शिक्षा-परीक्षा का प्रबन्ध विस्तृत किया जाए।

(च) समाज के निर्बल वर्गो के लिए शिक्षा की सुविधाए बढाई जाए।

आज देश की जनसख्या, स्वास्थ्य, पर्यावरण, जन-सचार तथा अन्य कितने ही क्षेत्रो मे मध्य स्तर के कारीगरो, शिल्पियो की आवश्यकता है, यदि परम्परा गत पाठ्यक्रमो मे थोडा बहुत अदल-बदल करके इन सामाजिक जरुरतो को पूरा करने के लिए कोई विश्वविद्यालय पहल करेगा तो विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग उसकी सहायता के लिए तत्पर होगा।

जहा ज्ञान वृद्धि और अनुसधान का सबध है वहा भी हम चाहेगे कि ऐसे विषयो पर अनुसधान हो जिनसे स्थानीय, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय समस्याओ के निदान ढूढने मे सहयता मिले।

गुरुकुल कागडी को विश्वविद्यालय स्तर की मान्यता प्राप्त है। इसका अर्थ यह है कि आपने विशेष क्षेत्र मे अपना एक परिपक्व स्थान प्राप्त कर लिया है और उस क्षेत्र मे आपका स्तर अन्य सस्थाओ से ऊचा है। भले ही इस विश्वविद्यालय मे सामान्य विश्वविद्यालयो की तरह विभिन्न विषयो के अध्ययन अध्यापन का प्रबन्ध न हो परन्तु अपने चुने हुए क्षेत्र मे इस विश्ववि-द्यालय की उपलब्धिया और प्रतिष्ठा अद्वितीय होनी चाहिए। वेद सत्य

विद्या की पुस्तक है। वेद को पढना पढाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है, अत वेद मे गहन अनुसधान करना, वेद का अध्ययन अध्यापन और विश्व की समस्त भाषाओ मे इसका प्रचार करना आपका मुख्य कर्तव्य है। यह प्रश्न आपको स्वय से पूछना होगा और इसका उत्तर देना होगा कि आप इस दिशा मे कितने अग्रसर है। इस प्रश्न का उत्तर आज राष्ट्र आपसे माग रहा है। आपके पास एक बहुत कीमती निधि है। आप उसका कितना प्रयोग कर रहे हैं ? आज देश को मार्गदर्शन की आवश्यकता है। वैदिक ज्योति के आप प्रकाश पु ज है। आशा है, गुरुकुल विश्वविद्यालय से ऐसी ज्योति प्रस्फुटित होगी जो न केवल देश का अपितु विश्व का मार्ग प्रशस्त करेगी। इस आशा और आर्शीवाद के साथ मैं इस राष्ट्रीय महत्व की वैदिक शिक्षा कार्यशाला का उद्घाटन करती हू।

धन्यवाद !

—०—

आर्य समाज और राजनीति

लें०—डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

अपने देश में दो प्रबल विचार-धाराएं बड़े वेग से चल रही हैं। एक है, 'सांस्कृतिक' विचार-धारा और दूसरी है 'राजनैतिक' विचारधारा। भारतवर्ष स्वतंत्र हो गया, तो भारत की प्राचीन संस्कृति, वह सस्कृति जिसके विषय मे हम कहा करते थे कि उसने विजेताओं को भी पराजित कर दिया, वह सस्कृति जिसके विषय में हम कहते थे कि ईजिप्ट और मैसेपोटामिया की सस्कृति नष्ट हो गई, परन्तु भारत की सस्कृति नष्ट नही हुई, भारत के स्वतत्र होने पर अब उस सस्कृति का पुनरुज्जीवन होना चाहिये, इतना ही नही कि उस सस्कृति का पुनरुज्जीवन होना चाहिये, अपितु उस सस्कृति का सदेश लेकर हमारे सन्देश हर देश-विदेश मे जाने चाहियें, एक तो यह विचार-धारा है। दूसरी विचार-धारा यह है कि हमे सस्कृति की तरफ अपना समय व्यर्थ में नही खोना, हमारा मुख्य कार्य राजनैतिक है, राजनैतिक अर्थात् मुख्य तौर पर आर्थिक। राष्ट्र का निर्माण कैसे हो, भूख की समस्या का हल क्या किया जाए, बेकारो को काम कैसे दिया जाए—हमारा काम मुख्य तौर पर इन प्रश्नो को हल करना है। सास्कृतिक दृष्टिकोण के व्यक्ति मुख्यत. आर्यसमाजी है, राजनैतिक दृष्टिकोण के व्यक्ति काग्रेसी है, सोशलिस्ट है, या कम्युनिस्ट है। राजनैतिक नेता किसी ऐसे शब्द से घृणा करते हैं जिस से 'धर्म' या 'सस्कृति' की गध आती हो। उन्होने यह घोषणा कर दी है कि भारतीय राष्ट्र का निर्माण असाम्प्रदायिक नीव पर होगा, इसमे किसी धर्म को मुख्यता न होगी, किसी धर्म को मानने के कारण किसी के अधिकार नही छिनेंगे। राजनैतिक नेताओ की यह घोषणा इतनी युक्ति-युक्त तथा सगत है कि इसके विरुद्ध सांस्कृतिक

(माननीय लेखक गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय के विज़िटर हैं। इससे पूर्व आप वाइस चांसलर भी रह चुके हैं। आप सुप्रसिद्ध विद्वान एव लेखक है।)

—सम्पादक

नेता भी कुछ कह नही सकते । आखिर, यह तो कोई भी नही कह सकता कि किसी भी राष्ट्र मे किसी धर्म के कारण अधिकारो का बटवारा हो । पाकिस्तान क्रिया मे भले ही कुछ क्यो न करता हो, परन्तु वहा भी कहने को यही घोषणा की जाती है कि पाकिस्तान सब धर्मो के साथ एक सा बर्ताव करेगा । विश्व की प्रगतिशील राजनीति मे आज कोई अपने को खुल्लमखुल्ला साम्प्रदायिक कहे, और दूसरो के साथ एक ही श्रेणी मे बैठ सके, ऐसा नही हो सकता । इसी का यह परिणाम है कि आज अत्यन्त उग्र साम्प्रदायिक कही जाने वाली सस्थाओ ने भी यह घोषणा की है कि वे भी भारत को असाम्प्रदायिक-राष्ट्र ही बनाना चाहती है । राजनैतिक नेताओ की इतनी बात मान लेने के बाद कि भारत असाम्प्रदायिक-राष्ट्र होगा, धर्म-भेद के कारण कोई ऊ चा नही माना जायेगा, कोई नीचा नही माना जायेगा, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि भारत की कोई अपनी सस्कृति होगी या नही, कोई ऐसी सस्कृति जो यूरोप की नही होगी, जो पाकिस्तान की नही होगी, जो भारत की अपनी होगी, और जिसे वह अपने पुराने इतिहास के अनुसार ससार के सामने रखने का साहस करेगा ।

सस्कृति का ऐसा प्रश्न है जिसमे राजनैतिक नेताओ को फिर धर्म की गध आती है । वे यह मानने के लिए तैयार हो सकते है कि भारतीय सस्कृति का देश-विदेश मे प्रचार हो, परन्तु उन्हे हर समय यह खटका बना रहता है कि सस्कृति के नाम से फिर धर्म जाग उठेगा और जिस बात से वे निपटना चाहते है, वही खतरा उन्हे फिर घेर लेगा । परिणाम यह हो रहा है कि धर्म के साथ-साथ सस्कृति पर भी राजनैतिक नेताओ का प्रहार हो रहा है, और वे यह कहते हुए सुने जाते है कि आखिर भारतीय सस्कृति है क्या चीज ? भारतीय संस्कृति क्या चीज है इसे समझाना तो कठिन है, सिर्फ झुझलाहट में आकर ही कोई ऐसा प्रश्न पूछ बैठता है । आखिर, जो सस्कृति हजारों, सालो से चली आ रही है, जिसके विषय मे स्वतत्रता-प्राप्ति से पूर्व हमारे ही नेता भेजे तोड दिया करते थे, जिसका नाम लेकर सोतो को जगाया करते थे, वह आज अगर स्वतत्रता प्राप्त कर लेने के बाद रही ही नही, तब तो उन्ही नेताओ का दोष है, सस्कृति का नहीं । अब प्रश्न यह है कि अगर भारत की अपनी कोई सस्कृति है, जिसे मानकर ही हम आगे विचार कर रहे है, तो उसकी रक्षा का, उसके बढने का, उसके प्रचार का क्या प्रयत्न किया जाये ?

राजनैतिक नेता जब यह देखते है कि सस्कृति-वादी लोगो की विचार-

धारा भी काफी प्रबल है, उनके भी काफी अनुयायी है, तो वे उन्हे कहते है कि आप राजनीति में दखल मत दो, फिर भले ही अपने विचारो का प्रचार करते रहो।

परन्तु क्या इस स्थिति को मान लिया जाए कि संस्कृतिवादी लोग राजनीति से अलग होकर जगल मे अपना हल चलाने लगे ? यह तो माना जा सकता है कि धर्म के नाम पर कोई सस्था राजनीति मे प्रवेश न करे, इसमे कोई सदेह नही के भारतवर्ष एक असाम्प्रदायिक राज्य ही बनना चाहिए, इसमे धर्म के कारण भेद-भाव, ऊच-नीच नही होना चाहिए, परन्तु यह कैसे माना जा सकता है कि भारतीय-सस्कृति के नाम पर भी कोई राजनीति मे प्रवेश न करे ? हम चाहते हैं कि यहा की राजनीति यूरोप के ढग से न चले, अमरीका के ढग से न चले, भारतीय-सस्कृति के ढग से चले। हम चाहते है कि यहा का राष्ट्रपति दस हजार रुपया मासिक वेतन न लेकर जनता के समान सम्मानित स्तर मे अपना गुजारा करे, हम चाहते है कि वह ब्रिटिश वाइसरायो की तरह न रहकर महात्मा गाधी की तरह रहे। अगर हम यह सब-कुछ चाहते है तो तभी तो चाहते है क्योंकि हम अपनी पुरातन भारतीय सस्कृति को, उस सस्कृति को जिसमे धन को वह स्थान प्राप्त नही था जो आज प्राप्त हो गया है, राजनीति के क्षेत्र मे पनपता हुआ देखना चाहते है। और, अगर हम भारतीय राजनीति को भारतीय सास्कृतिक विचारधारा के अनुसार फलता-फलता देखना चाहते है, तो क्यो न हम राजनीति मे भाग ले ? आखिर यह तो मानी हुई बात है कि वर्तमान युग मे सारी शक्ति राजनैतिक नेताओ के हाथ मे रहती है। वे जो नियम बना दे, अच्छे हो, बुरे हो, वे चलेंगे ही। राजनीतिक-क्षेत्र तो एक साधन है, एक शक्ति है, इस शक्ति का सहारा लेकर देश को किधर-से-किधर ले जाया जा सकता है। आखिर, राजनैतिक नेता भी तो अपने आदर्शों को क्रिया मे परिणत करने के लिए राजनैतिक शक्ति को अपने हाथ मे लेना चाहते हैं। कांग्रेसी अगर राजनैतिक-शक्ति को अपने हाथ मे लेना चाहते हैं, तो इसीलिए कि जैसा वे चाहते है वैसा देश को बना दे। इसी प्रकार सोशिलस्ट और कम्युनिस्ट भी राजनैतिक शक्ति को अपने हाथ में इसीलिए लेना चाहते है कि वे देश को सोशलिस्ट या कम्युनिस्ट बना दे। ये सब आर्थिक दृष्टिकोण पर ही बल देते हैं, परन्तु समाज का ढाचा सिर्फ आर्थिक नही, सास्कृतिक भी होता है। हमारे बच्चे कैसी शिक्षा ग्रहण करे, उन पर किस प्रकार के सस्कार पडे, वे सिनेमा या टेलीविजन द्वारा फैलाई जाने वाली गन्दगी से बचे या न बचे, उनका चरित्र कैसा हो-

यह सास्कृतिक दृष्टिकोण ही तो है। ऐसी स्थिति में सस्कृति-वादी क्यो न राजनैतिक शक्ति को अपने हाथ मे ले और क्यो राजनैतिक-क्षेत्र से अलग रहें ? कहा जा सकता है कि सस्कृति है ही अपनी इच्छा की चीज, इसके विस्तार मे राजनैतिक शक्ति का उपयोग क्यो किया जाय ? परन्तु यह तभी कहा जा सकता है अगर सस्कृति का अर्थ-धर्म समझ लिया जाय। राजनैतिक लोग गलती से, या जान-बूझकर 'सस्कृति' और 'धर्म' को एक कहने लगते है, परन्तु ये दोनो एक नही है। जैसे राजनैतिक विचारो के लिए राजनैतिक शक्ति को अपने हाथ मे लेना जरूरी है, वैसे सास्कृतिक विचारो के लिए भी राजनैतिक शक्ति को अपने हाथ मे लेना उतना ही जरुरी है। वैसे तो, राजनैतिक विचार के लोग भी तो जबर्दस्ती नही करना चाहते। क्या काग्रेसी कहते है कि हम अपने विचारो को जबर्दस्ती जनता पर लाद देनें ? सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट भी नही कहते कि उन्होने जबर्दस्ती करनी है। सभी 'डेमोक्रेसी' और 'जनता' का नाम लेते है। सस्कृतिवादी लोगो को भी राजनैतिक शक्ति का प्रयोग उसी प्रकार जनता के हित के लिए करना है जिस प्रकार राजनैतिक सस्थाए करने को कहते है। अगर काग्रेस को अधिकार है कि वह राज्य-शक्ति को अपने हाथ मे लेकर देश मे अपने अनुकूल वातावरण उत्पन्न करके अपने विचारो के अनुसार शासन स्थापित करे, अगर सोशलिस्टो को अधिकार है कि वे जनता का वोट अगर उनके साथ हो, तो राज्य शक्ति को अपने हाथ मे ले, और यहा की राजनीति को समाजवादी बनाये, तो सस्कृति-वादियो को भी उतना ही अधिकार है कि वे भारतीय सस्कृति के नाम पर सगठन बनाये, चुनाव लडे, अपने अनुकूल वातावरण उत्पन्न करे और भारत के आर्थिक प्रश्नो के साथ-साथ सास्कृतिक एव चारित्रिक प्रश्नो को भी हल करें। जो लोग समस्त एशियाई देशो की बडी-बडी कान्फ्रेन्स करके घोषणा करते है कि भारत एशिया का नेतृत्व करेगा उन्हे मालूम होना चाहिए कि एशिया के नेतृत्व के लिए 'डेमोक्रेसी' 'सोशलिज्म' या 'कम्युनिज्म' काम नही आएगा, उन देशो के नेतृत्व के लिए भारतीय सस्कृति काम आयेगी। 'डेमोक्रेसी' का नेतृत्व होगा इग्लैंड या अमेरिका से, 'सोशिलिज्म' या कम्यूनिज्म' का नेतृत्व होगा 'रूस' से— वे इन बातो मे हम से बहुत बढे-चढे हुए है। हम नेतृत्व करना चाहे, तो हमे अपनी सस्कृति ससार के सम्मुख रखनी होगी, वह सस्कृति जिसमे 'एटमबम्ब' से ससार का सहार करना हमारा लक्ष्य न होगा, प्राणि-मात्र की रक्षा हमारा लक्ष्य होगा, जिसमें अशोक की तरह हमारा राष्ट्र सास्कृतिक-विजय के लिए अपनी विचारधारा को लेकर निकल पडेगा। प० जवाहरलाल नेहरू को जो अमेरिका मे सफलता मिली थी वह 'डेमोक्रेसी'

का नारा लगाने का कारण नही, भारतीय सस्कृति के प्राण महात्मा गाधी की 'सत्य' और 'अहिसा' का जगह-जगह प्रचार करने के कारण, भारतीय सस्कृति का प्रतीक होने के कारण मिली थी।

इस सम्पूर्ण विवेचन का यह अभिप्राय है कि सस्कृति-वादियो को एक ऐसे प्रबल सगठन की आवश्यकता है जो सस्कृति के नाम पर खडा हो, और सस्कृति तथा चरित्र-निर्माण के नाम पर ही राजनीति मे भाग ले, चुनाव लडे, और भारतीय सस्कृति को इस राष्ट्र की ऐसी चीज बना दे जिससे यह देश सचमुच अन्य देशो का मूर्धन्य बन जय।

आर्य समाज का इतिहास एक विचित्र इतिहास रहा है। प्रगतिशील हिन्दू आर्य समाजी बन जाता है, ढीला-ढाला आर्य समाजी हिन्दू रह जाता है। प्रगतिशील होने के कारण आर्यसमाजियो ने सब क्षेत्रो को घेर रखा है। यद्यपि नीति के तौर पर आर्यसमाजी यही घोषणा करते रहे है कि आर्यसमाज का सामूहिक रूप से राजनीति के साथ कोई सम्बन्ध नही है, तो भी प्रत्येक आर्य-समाजी क्योकि एक जागा हुआ व्यक्ति है इसलिए वैयक्तिक रूप से वह राजनीति से अलग नही रहता। अर्सा हुआ जब पटियाला मे आर्यसमाजियो की धर-पकड हुई थी, और यह कह कर हुई थो कि आर्यसमाज अग्रेजो के विरुद्ध षडयत्र रचने वाली प्रच्छन्न राजनीतिक सस्था है। लाला लाजपतराय का राजनीति मे झुकाव हो आर्यसमाजी होने के कारण हुआ। उन दिनो के समाजी नेताओ ने जब देखा कि अपने राजनैतिक विचारो के कारण आर्यसमाज सरकार की कोपभाजन हो रही है, और इस कारण आर्यसमाज का धार्मिक और सास्कृतिक कार्यक्रम भी सन्देह से देखा जाने लगा है, तब उन्होने बडी बुद्धिमानो से यह घोषणा की कि आर्यसमाज सामूहिक रूप से राजनीति मे भाग नही लेगा, वैयक्तिक रूप से प्रत्येक आर्य समाजी राजनीति मे भाग लेने के लिए स्वतन्त्र है, परन्तु इस हालत मे किसी व्यक्ति के राजनैतिक विचारो का उत्तरदायित्व आर्य समाज पर नही होगा। इस घोषणा से आर्य समाज की सस्था के रूप मे जान तो बच गई, परन्तु इस का परिणाम यह हुआ कि प्रगतिशील युवक आर्य समाज को एक निकम्मे बुढ्ढो का, डरपोक लोगो का समुदाय समझने लगे, और तभी से आर्य समाज शिथिल होना शुरू हो गया। आज यह अवस्था हो गई है कि जो लोग सालो से आर्य समाजी चले आ रहे है, वे जो साप्ताहिक सत्सगो मे दिखाई देते है, नया खून आना बन्द हो गया है। पुराने व्यक्ति प्राय वृद्ध हो चुके है अत आर्यसमाज मे प्राय. पके हुए बाल ही नजर आते है। वे भी

आर्यसमाज के साथ इसलिए चिपटे हुए है क्योंकि उनकी पुरानी गद्दिया बनी हुई हैं, नई गद्दिया ढूढने और उन्हे बनाने मे जिस नवीन शक्ति की आवश्यकता है वह उनमे रही नही। अक्सर वे लोग शिकायत करते सुने जाते है कि पुराने जमाने मे यह होता था, नये जमाने मे कुछ नही होता, वे यह भूल जाते हैं कि नये जमाने को हो उन्होंने ऐसा बना दिया है जिसमे कुछ हो ही नही सकता।

आर्यसमाज के पास बडा भारी संगठन है, परन्तु वह बेकार पडा हुआ है। अभी तक कांग्रेस के अपने भवन नही है, उनके प्रचारक नही है। आर्य समाज के पास प्राय: प्रत्येक बडे शहर में अपने भवन हैं, प्रतिनिधि सभाऐं बनी हुई है, जनता प्राय आर्य-समाजी विचारो के अत्यन्त निकट है। यह सब कुछ होते हुए आर्य समाज अपने सास्कृतिक कार्यक्रम मे इसलिए पिछडा हुआ है कि इसने राजनीति का पल्ला कभी का छोडा हुआ है। अगर आर्यसमाज किसी प्रकार भी राजनीति को अपना सके तो इसके सब कार्यक्रमो मे जान आ सकती है, इसमें पुन: प्राणप्रतिष्ठा हो सकती है, तब युवको का फिर से आर्यसमाज केन्द्र बन सकती है।

यह पूछा जा सकता है कि आर्यसमाज को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता ही क्या है? कोई सस्था सदा बनी रहे, यह कोई आवश्यक बात नही। अगर वह जनता को अपील करती है, तो रहेगी, नही करती तो खत्म हो जायेगी। क्या आवश्यकता है कि सिर्फ आर्यसमाज को पुनर्जीवित करने के लिए आर्यसमाज के साथ राजनीति का पल्ला बाधा जाये। अगर राजनीति के बगैर आर्यसमाज जिंदा रह सकती है, तो जिये, नही रह सकती, तो समाप्त हो जाये। इस दृष्टि से तो हरेक धार्मिक सस्था को जिंदा रखने के लिए उसके अनुयायी उसका राजनीति के साथ पल्ला बाँधने लगेंगे और फिर धार्मिक बखेडे खडे हो जायेंगे। इसका उत्तर यही है कि आर्य-समाज केवल धार्मिक-सस्था नही नही है। आर्यसमाज राजनीति मे भाग ले, सिर्फ इस दृष्टि से मैं नही कहता कि आर्यसमाज केवल धार्मिक-सस्था नही है, परन्तु आर्यसमाज के सभी नेता सदा से आर्यसमाज के चौमुखे कार्यक्रम पर बल देते रहे है। आर्यसमाज का धार्मिक प्रोग्राम है, और बडा जबर्दस्त है, इससे इन्कार नही किया जा सकता, परन्तु धार्मिक कार्यक्रम के साथ-२ आर्यसमाज का सामाजिक, सास्कृतिक, चारित्रिक तथा शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम भी है। ऋषि दयानद ने सत्यार्थ-प्रकाश मे जो कुछ लिखा है वह सब आर्य-समाज का कार्यक्रम है। मैं आर्यसमाज को पुर्नजीवित करने के लिए नही कहता कि वह राजनीति में भाग

ले, परन्तु मैं तो यह कहता हूं कि आर्यसमाज अपने चौमुखे प्रोग्राम को अपने हाथ मे ले। क्या कारण है कि हम केवल ईश्वर, जीव, प्रकृति तक ही अपने को सीमित रखे ? हमारे कार्यक्रम में यह क्यो नही आता कि म्युनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, एसेम्बली के सदस्य आर्य समाजी विचारो के हो जो शीघ्र से शीघ्र आर्यसमाज के सास्कृतिक, सामाजिक, चारित्रिक तथा शिक्षा सम्बन्धी विचारो को क्रिया रूप में परिणत करे। हिन्दु, सिख, ईसाई, मुसलमान तो है ही सिर्फ धार्मिक सस्थाए, उस दृष्टि से आर्यसमाज सिर्फ धार्मिक सस्था नही है, अगर हो ही गई, तो इसके रूप को बदलना आवश्यक है। हमे इस बात को समझना होगा कि आर्यसमाज ने अग्रजो के काल मे अपने बचाव के लिए सिर्फ धार्मिक सस्था होने के रूप को धारण किया था, असल मे ऋषि दयानन्द ने इसे यह रूप नही दिया था। ऋषि दयानन्द का मन्तव्य एक ऐसी सस्था उत्पन्न करना था जो चौमुखा कार्य कर, चौमुखी लडाई लडे, और किसी क्षेत्र से अपने को अलग न रखे। हाँ, यह प्रश्न जरूर बना रह जाता है कि जब आर्य समाज का धार्मिक कार्यक्रम भी है, तब वह अगर राजनीति मे प्रवेश करेगी तो अपने धार्मिक प्रोग्राम को भी प्रचलित करेगी और इस अवस्था मे यह एक साम्प्रदायिक कार्य हो जाएगा।

इसी समस्या का हल करने के लिए ऋषि दयानद ने अपने ग्रथो मे तीन सभाओ का वर्णन किया है। 'धर्मार्य सभा', 'विद्यार्य सभा', 'राजार्य सभा' कोई समय था जब आर्य समाज सामूहिक रूप से तीनो सभाओ का कार्य करता था। आर्य समाज की अन्तरग सभा ही जलसे करती थी, प्रचार करती थी, उपदेश कराती थी, वही स्कूल-कालेज खोलती थी, गुरुकुल खोलती थी, वही समय पडने पर राजनैतिक प्रश्नो का भी हल कर देती थी। पहले-पहल आर्य-समाज की दिक्कत पेश आयी। देश मे विदेशी लोग शासन कर रहे थे, परन्तु ऋषि दयानद ने घोषणा की थी विदेशी राज्य कितना ही अच्छा हो वह देशी राज्य का स्थान नही ले सकता। आर्य समाजी क्या करते ? उन्होने पेट पालने के लिए रोटी भी कमानी थी, विदेशियो की नौकरी भी करनी थी, उन्हे वे अपना शत्रु भी समझते थे। इस दुविधा मे से निकलने का सबसे उत्तम उपाय तो यह था कि वे 'राजार्य-सभा' की स्थापना कर देते, और जो आर्य-समाजी दम-खम वाले होते, वे 'राजार्य-सभा के सदस्य होकर उसके नाम से विदेशियो से टक्कर लेते, जो इस दिशा मे कार्य न कर सकते, वे 'धमार्य-सभा' तथा विद्यार्य सभा के सदस्य रह कर उसके द्वारा अपना सेवा-कार्य जारी रखते। उस समय के आर्य-नेताओ ने सोचा होगा कि विदेशी लोग 'राजार्य-सभा'

के नाम से भी चिढेगे, और उसके बहाने आर्यसमाज का कार्य नही चलने देगे, इसलिए उन्होने राजनीति को सामयिक तौर पर अलग कर दिया, और अपना कार्य सिर्फ प्रचार करने तथा स्कूल-कालेज-गुरुकुल खोलने जो 'धर्मार्य-सभा' 'विद्यार्य-सभा' के कार्य थे वही तक परिमित कर दिया। जब शुरू-शुरू मे 'धमार्य-सभा' तथा 'विद्यार्य-सभा' की अलग-२ स्थापना भी नही की गई थी, बहुत पीछे जाकर, जब धर्म-प्रचार और विद्या-प्रचार के कार्य बहुत बढ गये तब किसी-१ प्रतिनिधि-सभा ने अपने क्षेत्र मे दो सभाए बनाई, और भिन्न-२ रूचि के अनुसार कोई 'धर्मार्य-सभा' और कोई 'विद्यार्य-सभा' मे कार्य करने लगे। क्योकि किसी भी सस्था के पिछले इतिहास को भुलाया नही जा सकता इसलिये यह बात तो ठीक है कि आर्यसमाज सामूहिक-रूप से राजनीति मे क्योकि अब तक भाग नही लेता रहा, तो अब भी न ले, परन्तु जिस प्रकार आर्य समाज ने अपने प्रचार-कार्य के लिए 'धर्मार्य-सभाओं' की स्थापना की है, जिस प्रकार उसने अपने शिक्षा-सम्बन्धी कार्य के लिए 'विद्यार्य सभाओं' की स्थापना की है, उसी प्रकार अपने शुद्ध सास्कृतिक तथा शिक्षा कार्यो को सशक्त बनाने के लिए 'राजार्य-सभा' की स्थापना करके राजनीति मे भाग क्यो न ले ?

जैसा ऊपर कहा गया है, राजार्य सभा का काम आर्यसमाज के सास्कृतिक तथा शिक्षा सबधी दृष्टिकोण को राज-शक्ति का सहारा देना होगा। राजार्य-सभा की स्थापना करते हुए आर्यसमाज को यह तो निश्चित कर लेना होगा कि राजार्य-सभा के तत्वावधान मे जो आर्यसमाजी एसेम्बलियो तथा पालिया-मेट मे चुने जायेगे उन्हे यह समझ कर ही जाना होगा कि इस देश मे हिन्दु, मुस्लमान, ईशाई आदि सभी-धर्मो के लोगो को रहना है, सभी को अपने-अपने धर्म की स्वतन्त्रता होगी, राज्य की तरफ से किसी के धर्म मे हस्तक्षेप नही होगा, परन्तु जहा तक सस्कृति का तथा शिक्षा का सबध है वहा तक आर्यसमाज की शक्ति से चुने हुए सदस्यो को पूरे बल से इस बात का प्रयत्न करना होगा कि इस देश की सस्कृति का निर्माण तथा विकास पाश्चात्य ढग से न हो, इस देश की शिक्षा का विकास इस प्रकार से हो जिससे हमारे देश के युवक इस देश की सस्कृति के रग मे रगे हो। देश का आर्थिक निर्माण तथा सास्कृतिक-निर्माण—ये दो बाते है जिस पर भिन्न-भिन्न सगठन भिन्न-भिन्न प्रकार से बल देते है। आर्थिक-निर्माण पर बल देने वाले अपने को यही तक सीमित रखते है कि सब को भर पेट खाना मिले, पहनने को कपडा मिले, रहने को मकान मिले, आर्थिक-विषमता दूर हो, कोई बहुत अमीर, कोई बहुत गरीब न हो। इससे आगे देश का क्या होता है, इससे उन्हें कोई सरोकार नही। जितनी राजनैतिक-सस्थाए है, वे यही अपना

कार्य-क्षेत्र समझती है। परन्तु क्या देश का निर्माण बस इतने से हो जाता है? खाना मिले, कपडा मिले, मकान मिले, पैसा मिले—इस सब मिलने के बाद रेडियो तथा टेलीवीजन मे गन्दे, अश्लील गाने सुनने को मिले, सिनेमा घरो मे जवान लडकियो का नगा नाच देखने को मिले, बडे-बडे घरो के लडके बन्दूक-पिस्तौल लेकर दिन-दिहाडे बैंको पर डाके डाले, बडे-छोटे घरो की लडकिया, बहू-बेटियाँ शराब घरो मे नाच, राग-रग मनाए—इस तरफ किस का ध्यान जाता है? अगर किसी राजनैतिक नेता से पूछा जाय कि रोज-२ रेडियो से ये जो गीत चिघाडा जाता है—"हम तुम एक कमरे मे बन्द हो, और चाबी खो जाये"—जिस गीत को सुनकर आज बच्चा-बच्चा यही तराना उडाता फिरता है, क्या यही देश का निर्माण हो रहा है? तो नेता जी का इस प्रश्न के सबध मे क्या उत्तर है? असल मे, देश के सामने दोनो विकट समस्याए है—आर्थिक समस्या तथा सास्कृतिक समस्या। आर्थिक समस्या पर राजनैतिक लोग अपना दिमाग लडाते रहे, इस पर किसी को आपत्ति नही हो सकती। आर्थिक-आधार पर काग्रेस, सोशियलिस्ट, कम्यूनिस्ट, जनसघी—जो भी मैदान मे आये ठीक है, परन्तु—क्योकि देश की समस्या सिर्फ आर्थिक ही नही है, सास्कृतिक भी है, इसलिए भारतीय सस्कृति पर बल देने वाली सस्था—आर्यसमाज—का भी 'राजार्य-सभा' के निर्माण द्वारा राजनीति मे प्रवेश करना आवश्यक है। सब आर्य समाजियो के 'राजार्य-सभा' के सदस्य बनने की आवश्यकता नही, सब आर्यसमाजी 'धर्मार्य-सभा' या 'विद्यार्य-सभा' के भी तो सदस्य नही है। 'राजार्य-सभा' आर्यसमाज का राजनैतिक पक्ष होगा जिसका मुख्य उद्देश्य एसेम्बलियो तथा पालियामेट मे इस घोषित उद्देश्य से प्रवेश करना होगा कि वे देश का निर्माण करने मे भारतीय सास्कृतिक दृष्टिकोण को पुष्ट तथा क्रियात्मक रूप देने मे राजनैतिक-शक्ति का सहारा चाहेगे। अगर कोई कहे कि रेडियो पर गदे गीत गाने की स्वतत्रता होनी चाहिए, सिनेमा मे नगा नाच करने तथा दिखाने की छूट होनी चाहिए, अगर कोई कहे कि यूरोप की तरह लडके-लडकियो को विवाह के पूर्व यौन-सबध करने की आजादी होनी चाहिये, तो कहने दो उन्हे, यह सब तो हो ही रहा है, परन्तु ऐसेम्बलियो तथा पालियामेट मे ऐसे लोगो का रहना भी जरूरी है, जिनका मुख्य उद्देश्य आर्थिक समस्या का हल करना न होकर इस नारकीय विचारधारा पर लगाम डालना हो। आर्थिक-समस्या का हल करने पर तो सभी लगे हुए है, इतनो के लगे होने पर वह तो कभी-न-कभी हल होगी ही, परन्तु सास्कृतिक-चारित्रिक-भविष्य के युवा-युवतियो के जीवन-निर्माण की समस्या पर किसका ध्यान है? यही समझा जा रहा है कि सब को भरपेट खाने को मिल जाय, अमीर-गरीब का भेद मिट जाय, तो देश मे स्वर्ग उतर आयेगा। यह कोई

नही सोचता कि खाने-पीने वाले, मकान-महल वाले सब भौतिक सुख-सपदा पाकर भी अगर चरित्र खो बैठे, तो सब कुछ पाकर भी कुछ न पा सके। आज इस चरित्र पर किसी राजनैतिक नेता का ध्यान नही जाता क्योकि उनका अपना चरित्र ही डावाडोल है। इसी चरित्र-निर्माण को—जिसे मैंने सास्कृतिक दृष्टिकोण कहा है—**भारतीय राजनीति में उच्च-शिखर पर ला बैठालने के लिये आर्यसमाज द्वारा 'राजार्य-सभा' के सगठन की आवश्यकता है** जिसके तत्वावधान मे चुने जाकर हमारे प्रतिनिधि देश की विधानसभाओ मे इस नए दृष्टिकोण की हल चल मचा दे, ठीक ऐसी हलचल मचा दे जैसे कम्युनिस्ट कम्युनिज्म की, सोशियलिस्ट सोश्यलिज्म की हलचल मचाया करते हैं। चरित्र निर्माण के इस पक्ष को विधान-सभाओ तथा ससद मे आग की लपटो की तरह जगा देना 'राजार्य-सभा' के तत्वावधान मे चुने गए सदस्यो का मुख्य लक्ष्य होना चाहिये।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि चरित्र-सम्बन्धी सदाचार की जो बाते हम ने लिखी है जिन्हें हमने भारतीय सस्कृति का नाम दिया है उन्हे तो सब कोई मानते है, भारत मे ही क्या सब देशो मे मानते है, फिर उन्हे भारतीय-सस्कृति क्यो कहा जाय, और उसके लिए आर्यसमाज को ही क्यो राजनीति मे प्रवेश करने की जरूरत हो। यह ठीक है कि सब देश वैयक्तिक तथा सामाजिक चरित्र की भी बात करते है, परन्तु बात ही तो करते है, चलती बात करते है व्यवहार मे चरित्र कहा है? हमारी राजनीति ऋषि दयानन्द या महात्मा गाधी की राजनीति नही है। यह ठीक है कि शराब नही पीनी चाहिए, सब कोई इसे मानते है, परन्तु पब्लिक मे शराब न पीने को लेक्चर झाडकर प्राइवेट मे वे इसकी बोतलो पर बोतले खाली कर देते है, यह ठीक है कि रिश्वत नही लेनी चाहिए, इसे वे भी उच्च-धोखा स्वीकार करते है, परन्तु रिश्वत ले-लेकर उनके बैंक के खाते दिनों-दिन बढते जाते हैं, यह ठीक है कि सरकार का काम नवयुवको तथा नवयुवतियो के लिए ऐसा सामाजिक वातावरण उतपन्न करना है जिससे उनके चरित्र का निर्माण हो, परन्तु सरकार द्वारा सचालित रेडियो तथा टेलीवीजन मे गन्दे, अश्लील गाने तथा दृश्य रोज दिखलाये जाते है, यह ठीक है कि अमोद-प्रमोद के लिए जनता को सिनेमा-नाटक की जरूरत है, परन्तु इन्ही सिनेमा-नाटको को देखकर हमारे युवक युवतियो का अपहरण करना, बैको की डकैतिया आदि सीख जाते है परन्तु राजनैतिक नेताओ के आर्थिक-समस्याओ मे ही उलझे रहने के कारण इधर किसी का ध्यान नही जाता, यह ठीक है कि पिछले २५ साल से हर विधान-सभा मे, शिक्षा-सुधार की रट लगाई जाती है, जिस दिन देश स्वतत्र हुआ उस दिन जो बच्चा पैदा हुआ वह आज स्वय बच्चो

का बाप हो चुका है, परन्तु हमारी शिक्षा का रूप ग्राज भी जहां का तहा खडा है। क्या इस सब का यह ग्रर्थ नही कि हमारे राजनैतिक क्षितिज मे एक भूचाल लाने की जरूरत है, राजनैतिक क्षेत्र मे ऐसे लोगों के प्रवेश करने की ग्रावश्यकता है तो ग्रमीरी गरीबी की समस्या को हल करने के लिए हमारे नेता कितना जोर लगा रहे है उन्हें तो उतना जोर लगाने ही दें परन्तु उसके साथ देश के सास्कृतिक-निर्माण, चारित्रिक उत्थान की ग्रावाज भी उसी तरह बुलन्द करते रहें। ग्राज सस्कृति का ग्रर्थ नाचना-गाना समझा जाता है। हमारे देश से सांस्कृतिक-दल विदेशो मे भेजे जाते है, विदेशो से सास्कृतिक-मडलिया हमारे देश में ग्राती हैं। ये सांस्कृतिक-मिशन क्या होते हैं? नाचने-गाने वालो के समूह होते हैं। ये इस सारे दृष्टिकोण को बदलना होगा। कोई युग था जब ग्रशोक ने सास्कृतिक मिशन देश-विदेश भेजे थे। ग्राज तक उनकी छाप लका, बर्मा, चीन, जापान, इडोनेशिया मे मौजूद है। ग्रशोक-चक्र को हमने ग्रपना राष्ट्रीय चिन्ह माना है। क्या ग्रशोक ने नाचने-गाने वाले विदेश भेजे थे? हमारे किस राजनैतिक नेता का सास्कृति के इस पक्ष की तरफ ध्यान है? ग्रगर हमने सब ग्रार्थिक समस्याग्रों का हल कर लिया, ग्रमीर-गरीब का भेद मिटा दिया, समाजवाद की छाया में सारा देश ग्रा गया, परन्तु समाजवादी ग्रार्थिक समस्याग्रो से मुक्त होकर चैन की बसी बजाते हुए घर मे बैठ कर शराब की बोतलें उडेलने लगे, नाच-गाने मे मस्त रहने लगे, रेडियो, टेलीविजन ही देखते रहे, तो उनकी सिर्फ ग्रार्थिक-समस्या ही तो हल हुई उन्होने इसानियत का सवाल तो नही हल किया। हमारे कथन का यह ग्रर्थ नही है कि हमारी राजनीति मे चरित्र को, हमारी सस्कृति को कोई स्थान नही है, है—परन्तु ग्रावान्तर रूप से है, जो कुछ है, वह न होने के बराबर है, कभी-२ उससे चरित्र का विनाश भी हो रहा है। इस राजनीति में चरित्र का जबरदस्त पुट देने की ग्रावश्यकता है, बिना चरित्र का पुट दिये हमारी राजनीति फैल हुई जाती है, हम जिस राजनीतिक या ग्रार्थिक सगठन की रचना करते है उसी मे साथ-२ भ्रष्टाचार के बीज पनपते जाते हैं क्योकि चारित्रिक-निर्माण की तरफ हमारा ध्यान नही है।

यह ठीक है कि इने-गिने ग्रार्य समाजियो के विधान-सभाग्रो या ससद मे ग्रा जाने से देश मे नैतिक परिवर्तन नही हो जाएगा। परन्तु इस मे सदेह नही कि जो नैतिकता के, सस्कृति के, चरित्र के नारे को लेकर चुने जायेंगे, वे बीस-तीस भी होगे, तो देश की राजनीति को नैतिक मोड दे सकेंगे। ग्रब तो वहा कोई इस ग्रावाज को उठाने वाला ही नही है। जो कोई ग्रार्य समाजी वहा जाते है, वे केवल ग्रार्यसमाज पर नही जाते, किसी पार्टी विशेष के बल पर जाते हैं

श्रौर इसलिए अपने को उस पार्टी का पहले, और आर्यसमाज का पीछे मानने लगते है। यह कहा जा सकता है कि यह काम आर्यसमाज ही क्यो करे, यह तो सब-किसी के करने की बात है। ठीक है, सब-किसी के करने की बात है परन्तु करता तो कोई नही। आर्य समाज सदा मे इस दिशा मे काम करता रहा है, अपनी नीव पडने के दिन से करता रहा है, इसलिए आज जब हम इस सस्था की नीव पड़ने की शताब्दी मनाने जा रहे है, तब आर्यसमाज की गति-विधि को व्यापक बनाने के लिए, देश के हित के लिए यह घोषित कर देना चाहिए कि आर्य समाज गाव-२, जिले-२, प्रान्त-२ मे 'राजार्य-सभा' का सगठन बनायेगी, उस सगठन द्वारा सीधी देश की राजनीति मे प्रवेश करेगी, उसका उद्देश्य राज्य-शक्ति के माध्यम से भारतीय-सस्कृति का प्रचार करना होगा, युवको तथा युवतियो के चरित्र का निर्माण करना होगा, शिक्षा-सस्थाओ का भारतीय दृष्टि-कोण से सुधार करना होगा, रेडियो-टेलीविजन-सिनेमा-नाटक आदि मे अश्लीलता का लोप करना होगा, यह सब कुछ करते हुए वह किसी के धर्म-विशेष मे हस्तक्षेप नही करेगी, क्योकि उसका उद्देश्य एक परिमित सीमा मे बधा हुआ होगा, ऐसी सीमा मे बधा होगा जिसका-चरित्र निर्माण-का हिन्दु, मुसलमान, ईसाई, मुसाई, काग्रेसी, नान-काग्रेसी, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट सभी अनुभव करते है, परन्तु जिसकी तरफ कोई ध्यान नही देता, परन्तु जिस ध्यान न देने के कारण देश आगे बढता-२ पीछे खिसकता जाता है, जिस ध्यान न देने के कारण हमारा सब किया-कराया मिट्टी मे मिला जाता है। यह काम आर्य समाज ही कर सकता है, और आज इस काम के करने का समय आ गया है।

स्मारिका दिस० १६७५ से साभार।

— 0 —

राष्ट्रभाषा सम्मेलन या अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन ?

ले० डा० वेदप्रताप वैदिक

भाषा के प्रश्न पर आर्य समाज को नये सिरे से विचार करने की जरूरत है। हम यह देख रहे है कि आर्य समाज के हर बडे उत्सव पर राष्ट्रभाषा सम्मेलन का आयोजन किया जाता है तथा आर्य समाज के अलावा अन्य कई सस्थाए भी हिन्दी या राष्ट्रभाषा के प्रचार के लिए कटिबद्ध है तथापि स्वतन्त्र भारत मे हिन्दी का प्रभाव दिनोदिन गिरता जा रहा है। इसका क्या कारण है ? इस कारण को यदि नही खोजा गया तो अगले हजार बरस तक राष्ट्र-भाषा सम्मेलन करने के उपरात भी हिदी अपने स्थान से एक अगुल आगे नही बढेगी ।

वास्तव मे राष्ट्रभाषा का प्रचारक यह नही जानता कि उसका असली दुश्मन कौन है ? यह है-अग्रेजी ! जब तक अग्रेजी का दबदबा खत्म नही किया जायेगा, हिदी कभी आगे नही बढेगी। हम लोग हिदी चलाने की बात करते है कि अपने बच्चो को अग्रेजी माध्यम की पाठशालाओ मे भेजना पडता है, नौकरी प्राप्त करने के लिए अग्रेजी का इस्तेमाल करना पडता है और देश मे चलने वाला सारा ऊचा काम-काज अग्रेजी मे होता है। अब आप हिदी की जय बोलते रहिये लेकिन हिदी जहा है, वही रहेगी।

आज हिदी को चलाने के बजाय अग्रेजी को हटाने की जरूरत है। अग्रेजी हटाओ का मतलब यह कतई नही है कि हमे अग्रेजी से नफरत है। किसी भी भाषा या साहित्य से कोई मूर्ख ही नफरत कर सकता है, यदि कोई स्वेच्छा से अग्रेजी या दुनिया की अन्य भाषाए पढना चाहे, उनके माध्यम से ज्ञान का दोहन करना चाहे तो हमे प्रसन्नता ही होगी। लेकिन आपत्ति तब उपस्थित होती है जब ज्ञान के एक साधन को रुतबे का, विशेषाधिकार का, शोषण का हथियार बना लिया जाय।

अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन अंग्रेजी का नही, बल्कि उसके रुतबे का, विशेषाधिकार का, उसकी शोषणकारी प्रवृत्ति का विरोधी है। इसलिए हमने कहा 'अंग्रेजी हटाओ' हमने यह कभी नही कहा कि 'अंग्रेजी मिटाओ'। अब सवाल यह है कि अंग्रेजी कहा से हटे ? न्यायालय से हटे, राजकाम से हटे, कारखानो से हटे, फौज से हटे, अस्पताल से हटे, पाठशाला प्रयोगशाला से हटे, घर-द्वार-बाजार से हटे। हट कर कहा जाए ? पुस्तकालयो में जाए, विदेशी भाषा-शिक्षण सस्थानो मे जाए। वही भी सारी जगह घेरकर पसरे नही। दुनिया की अन्य भाषाओ के लिए भी थोडी-थोडी जगह खाली करे। हटना उसे सभी जगह से पडेगा। कही से थोडा, कही से ज्यादा।

लुधियाना के कुछ आर्य समाजी बधुओ ने मुझ से कहा कि 'अंग्रेजी हटाओ' मे निषेधात्मकता की गंध आती है। यह 'निगेटिव' नारा है। मैंने पूछा, अहिंसा क्या है, अस्तेय क्या है, अपरिग्रह क्या है, ब्रह्मचर्य क्या है ? क्या ये सब निषेध के सिद्धांत नही है ? आर्य समाज के सस्थापक महर्षि दयानन्द ने पाखड-खडिनी पताका फहराकर बुराइयों को टक्कर मारकर गिराने का जो साहस पैदा किया, क्या वह निषेधात्मक नही है ? सत्यार्थ प्रकाश के आखिरी चार समुल्लासो में क्या स्वामी जी ने पाखडो को बेरहमी से नही ढहाया है ? महात्मा गाधी का 'असहयोग' क्या था ? इदिरा गाधी का 'गरीबी हटाओ' क्या है ? यह नारा निषेधात्मक ही नही है, बल्कि 'अंग्रेजी हटाओ' की भोंडी-सी नकल भी है, (क्योकि गरीबी तो मिटाई जानी चाहिए।) निषेध से डरिये मत। सृष्टि के नियम को समझिए। बिना ध्वस के निर्माण नही हो सकता। छोटा-सा मकान भी बनाना हो तो नीव खोदनी पडती है। जो खुदाई के डर से नीव नही डालता, उसके मकान का अजाम क्या होगा ? वही होगा जो पिछले पच्चीस वर्षों मे हिंदी का हुआ। हिंदी वाले लोग अंग्रेजी को हटाये बिना हिंदी को लाना चाहते थे। नतीजा क्या हुआ ? अंग्रेजी अपने स्थान पर जमी रही और हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओ मे एक नकली लडाई चल पडी। अंग्रेजी हटाओ आदोलन इस नकली लडाई का विरोध करेगा। वह समस्त भारतीय भाषाओ को अंग्रेजी के वर्चस्व के विरुद्ध एक सशक्त चट्टान की तरह खडा करना चाहता है। जब तक अंग्रेजी नही हटती, भारतीय भाषाए एक नही होगी।

अंग्रेजी हटाओ आदोलन और हिंदी चलाओ आदोलन में भी बुनियादी फर्क है। हिंदी आदोलन वाले लोग चाहते हैं कि अंग्रेजी का स्थान हिंदी ले ले।

उन्हे इस बात की चिता नही है कि अंग्रेजी की तरह हिंदी भी शोषण का, विशेषाधिकार का और रुतबे का हथियार बन सकती है। अगर हिंदी के आने का नतीजा यह हो कि अन्य भाषा वालो के लिए नौकरियो का, अवसरों का, आगे बढने का मार्ग दुर्गम हो जाए जो फिर हिंदी को लाने से फायदा क्या हुआ ? वह भी अंग्रेजी की तरह देश मे गैर-बराबरी को बढाएगी। फर्क इतना होगा कि आज अंग्रेजी के कारण जहा दो प्रतिशत लोग सारे देश को रौंद रहे हैं, वहा ३० प्रतिशत लोग बाकी ७० प्रतिशत लोगो के साथ अन्याय करेंगे। आर्य समाजियो को हर अन्याय के विरुद्ध लडना चाहिए। चाहे वह छोटा हो या बडा। मैं नही चाहता कि मेरी मातृभाषा वही घिनौना कार्य करे जो कि अंग्रेजी कर रही है। इसीलिए हम सारे देश मे हिंदी को थोपने के विरोधी है।

इसका मतलब यह नही है कि हमने सारे देश को जोडने वाली भाषा के सवाल पर विचार नही किया है। सारे देश को जोडने वाली भाषा कोई भी भारतीय भाषा हो सकती है। लेकिन इस काम के लिए हिंदी सबसे अधिक अनुकूल भाषा होगी क्योकि किसी भी एक भाषा की तुलना मे इसके बोलने वाले सबसे ज्यादा है, इसकी लिपि— देवनागरी-सरल और वैज्ञानिक है तथा यह भाषा भारत के सबसे बडे इलाके मे बोली जाती है। जहा तक हिंदी देश की सारी भाषाओ को जोडती है, वहा तक हिंदी को लाने मे हमे कोई एतराज नही है। लेकिन हिंदी अन्य भाषाओ का हक मारे, यह उचित नही है। हर प्रदेश मे, उस प्रदेश की भाषा पूरी तरह से चलनी चाहिए। केंद्र मे भी प्रदेशो से आने वाले लोगो को अपनी-२ भाषा के जरिये नौकरी पाने, ससद मे बोलने, न्याय पाने और शिक्षा पाने का पूरा अधिकार होना चाहिए। उन्नति के अवसरो मे हिंदी को आड़े नही आना चाहिए। हिंदी का काम केवल विभिन्न भाषा-भाषियो के बीच सपर्क स्थापित करना है। केंद्रीय सरकार और केंद्रीय सस्थाओ का अपने तई सारा काम काज केवल हिंदी मे चल सकता है, चलना चाहिए। लेकिन प्रदेशो से उनकी भाषा मे आने वाले पत्रो को केन्द्र के द्वारा न केवल स्वीकार किया जाना चाहिए बल्कि उन्ही की भाषा मे उन पत्रो का जवाब दिया जाना चाहिए। किसी व्यक्ति, सस्था या प्रादेशिक सरकार को इसलिए घाटे मे नही रखा जाना चाहिए कि वह हिंदी मे प्रवीण नही है।

इस कार्य को कम खर्चीला और सुगम बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हर सरकारी विभाग के साथ कुछ अनुवादक सलग्न कर दिये जायें। ऐसे

अनुवादक भी हो सकते है, जो कि तीन-२ चार-२, पाच-२ भाषाए एक साथ जानते हो। इन अनुवादको पर होने वाला खर्च अनिवार्य अंग्रेजी को चलाए रखने के लिए होने वाले खर्च से निश्चित रूप से कम होगा।

सोवियत सघ और यूरोप के उन देशो मे जहा अनेक भाषाए बोली जाती है वहाँ ऐसा ही किया जाता है। कोई भी देश अनुवाद के खर्चे के डर से किसी विदेशी भाषा को अपने आप पर नही लादता। देशी भाषाओ की सास्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि एक होने के कारण उनमे परस्पर अनुवाद करना इतना सरल होता है कि कुछ ही वर्षो मे बहुत से लोग अपने आप कई भाषाए सीख जाते है और फिर अनुवादको की जरूरत नही रहती, जैसा कि स्वीटजरलैंड और युगोस्लाविया मे हुआ है।

इस बात पर आपत्ति की जा सकती है कि सरकार अपना समय राज-काज मे लगाये या वह इन भाषाओ के चक्कर मे पड जाए। मै पूछता हू कि अगर जनता से सीधे उसकी जुबान मे उसके दुख दर्द नही सुनोगे और सीधे उसकी जुबान मे उसकी समस्याओ का समाधान नही दोगे तो अच्छा और सच्चा राज-काज कैसे चलाओगे ? नकली समस्याओ और उनके नकली समाधानो का राज-काज तो इस देश मे पिछले पच्चीस साल से चल ही रहा है। अगर आप देश के एक औसत आदमी को यह विश्वास दिलायेगे कि बडे से बडे स्तर पर भी उसकी भाषा को नीचा नही देखना पडेगा तो काम-चलाउ हिंदी सीखने मे उसे ज़रा भी एतराज नही होगा। आज दक्षिण का आदमी हिंदी का विरोध क्यो करता है ? सिर्फ इसलिए कि उसे डर है कि उसकी नौकरिया चली जायेगी। वह अवसरो की दौड मे पिछड जायेगा। हिंदी आँदोलन ने 'हिंदी-हिंदी' चिल्लाकर इस डर को बढाया है इस डर को पुख्ता तौर पर खत्म किया जाना चाहिए। यह डर तभी खत्म होगा जब कि अंग्रेजी हटेगी। अंग्रेजी हटेगी तो उत्तर भारत के लोग दक्षिण की भाषाए सीखेगे। अंग्रेजी रहती है तो उत्तर भारत के लोग सोचते है कि तमिल, तेलुगु, कन्नड, कलयालम सीखकर क्या करेगे ? अंग्रेजी मे ही बात कर लेगे। इसी प्रकार दक्षिण वाले भी सोचते है। जब अंग्रेजी मे काम चल जाता है तो हिंदी क्यो सीखे ? इस प्रकार अंग्रेजी की कृपा से उत्तर-दक्षिण के बीच सच्चा मेल-मिलाप ही नही होता। अंग्रेजी के जरिये जो नकली मेल-मिलाप होता है, वह भी कितने लोगो का ? २ प्रतिशत लोगो का भी नही। इन्ही दो प्रतिशत लोगो का काम चल रहा है। बाकी ९८ प्रतिशत लोगो का काम ठप्प है। उनके

जीवन मे अधेरा ही अधेरा है। अधेरे वाले लोगो मे दक्षिण और उत्तर की सभी साधारण जनता शामिल है। अंग्रेजी हटाओ आदोलन देश के करोडो लोगो को अधेरे से उजाले की ओर ले जायेगा। वह उत्तर और दक्षिण मे, पूरब और पश्चिम मे कोई भेद नही करेगा। उसके लिए सारे देश की गरीब-ग्रामीण, दमित, पीडित, विपन्न जनता एक है। वह इस सामान्य जनता की भाषाओ को आगे लायेगा और एक छोटे से छोटे आदमी के दिल मे भी यह अहसास पैदा करेगा कि वह अपनी भाषा के जरिये बडे से बडे पद पर पहुंच सकता है। इसी आधार पर मै कहता हू कि अंग्रेजी हटाओ मनुष्य मात्र को मुक्ति का आंदोलन है।

इस सक्षिप्त लेख मे मैंने अंग्रेजी हटाओ आदोलन पर मोटे तौर से विचार किया है। (इस विषय पर मेरे विचार विस्तार पूर्वक जानने के लिए पढिये— "अंग्रेजी हटाओ . क्यो और कैसे ? पुस्तक") अच्छा तो यह हो कि अपनी जन्म शताब्दी के अवसर पर आर्य समाज अंग्रेजी हटाओ आदोलन को सारे देश मे फैलाने का सकल्प करे। शुरू शुरू मे चार-पाच बडे-बडे काम किये जाय। जैसे .

१ सघ तथा प्रादेशिक लोक-सेवा आयोगो की परीक्षा से अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त करवाये।

२ अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलो को बद करवाये।

३ स्कूलो और कालेजो मे अंग्रेजी की अनिवार्य पढाई खत्म करवाये।

४, न्यायालयो और विधान सभाओ मे अंग्रेजी के प्रयोग को अवैधानिक घोषित कराये।

५ बाजारो और घरो पर लगे अंग्रेजी नामपटो को पोते।

इन सब कार्यों को करने के लिए आर्य समाज को पत्र-व्यवहार, वार्ता, प्रचार, प्रदर्शन, सत्याग्रह, धरना, घेराव तथा अन्य अहिसक कार्यो के लिए तैयार होना पडेगा। हैदराबाद और पजाब के सत्याग्रहो की भावना को जगाना होगा। यदि आर्य समाज इस महत् कार्य का बोझ अपने कधो पर उठा ले तो एक बार फिर लाखो नौजवान उसके आक्रोऽ मे आ जायेगे।

स्मारिका दिस० १९७५ से साभार।

—०—

सृष्टि जब तक है अमर हो तुम तुम्हारे गान तुलसी!

ले०—डा० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट०
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

प्रत्येक भाषा को गौरव प्रदान करने वाले उसके कवि अथवा साहित्यकार ही होते है। हिन्दी भारत की जनभाषा तथा राष्ट्रभाषा है। महर्षि दयानन्द ने भी सस्कृत को अपने प्रचार का माध्यम न बनाया हिन्दी को बनाया था। इसका कारण स्पष्ट है कि सस्कृत को सामान्य जनता न बोलती है और न समझती है अस्तु आर्यसमाज का प्रचार जनता की भाषा मे किया जाना उचित था। ताकि उसे सामान्य जन समझ सके। जनता द्वारा प्रयुक्त हिन्दी अवधी, बृजभाषा तथा खडीबोली रही है। हिन्दी का अधिकाश साहित्य अवधी तथा ब्रजभाषा मे लिखा गया है। भारतीय जनता मे सबसे अधिक प्रचार तुलसी के काव्य का है। उसमे भी सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ उनका रामचरित मानस है। मानस की विशेषता यह है कि वह लिखा तो अत्यन्त सरल भाषा मे गया है परन्तु उसके भीष्म अत्यन्त गूढ भाव भी भरे हुए है। कवि ने अपना सिद्धान्त भी यही रखा था,

यथा—

सरल कवित कीरति बिमल, सोइ आदरहि सुजान।
सहण बयर बिसराह रिपु, जो सुनि करहि बरवान।

(रामचरित मानस/बालकाण्ड/१४/दोहा/१)

इसका अर्थ यह है कि बुद्धिमान लोग उसी कविता का आदर करते हैं जो सरल हो तथा जिसमे निर्मल चीजो का गायन हो साथ ही जिसे सुनकर शत्रु-गण भी स्वाभाविक शत्रुता को भुलाकर उसकी प्रशसा करने लगे।

इससे श्रेष्ठ सिद्धात कदाचित ही किसी कवि का रहा होगा। अन्य कवियों के काव्य का अर्थ समझने के लिए तो विद्वानो की अपेक्षा होती है। परन्तु एक तुलसी का काव्य ही ऐसा है जिसे हिन्दी भाषा का सामान्य ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी भली प्रकार समझ सकता है। इसके साथ ही बडे से बडे विद्वानो के हेतु उसमे प्रकाण्ड पाण्डित्य विद्यमान है।

कवि ने जिस "राम" के चरित्र का गायन किया है उसका उल्लेख वेदो मे मिलता है। डा० कामिक वुल्के की "राम कथा" के प्रथम अध्यक्ष मे तथा माधवाचार्य कृत "पुराण दिग्दर्शन" के पृष्ट २६५ पर वेदो से दिए गए उद्दरणो से प्रगट होता है कि उस समय भी दशरथ, सीता और राम के नाम प्रसिद्ध थे। यदि इसे न भी स्वीकार किया जाये और इतिहासकारो के मतानुसार यही माना जाये कि राम का समय वेदो के पश्चात् रहा होगा तो भी उक्त कथन पर आच नही आती क्योकि पहले जिन शब्दो का प्रयोग भाववाचक सज्ञाओ के रूप मे किया जाता रहा हो उनका प्रयोग बाद मे व्यक्तिवाचक सज्ञाओ के रूप मे किया जा सकता है। अनेक स्थानो एव व्यक्तियो का नामकरण करते समय आज भी यही परम्परा प्रचलित है। तुलसी ने स्पष्ट लिखा है—

नानापुराण निगमागम सम्मत यद् रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोदपि।
(बालकाण्ड/७)

इसके साथ ही यह भी उल्लेख किया है—

बदौ चारिउ बेद, भव-करिधि-बोहित सीस।
जिन्हहि न सपनेहु खेद, बरनत रघुबर बिमल जस॥
(रामचरितमानस/बालकाण्ड/१४/सोरभ/२)

उपर्युक्त सोरठे मे कवि का आशय स्पष्ट है कि वेदो मे राम का यश नीर्मत है और वेदवाणी कभी मिथ्या नही हो सकती।

कवि ने "राम" नाम का चयन वेदसम्मत मार्ग को अपनाने के लिए किया होगा इसमे कोई सन्देह नही। एक स्थल पर उनकी वेद-आस्था इस प्रकार प्रगट हुई है।

बरन धरम नहि आस्रम चारी।
स्रुति-बिरोध-रत सब नर नारी॥
(रामचरितमानस/उत्तरकाण्ड/९८/१)

उपर्युक्त प्रसग मे कवि ने स्वाभाविक चार आश्रमो तथा चार वर्णों के महत्व को वेदसम्मत पद्धति पर स्वीकार करने की प्रेरणा प्रदान की है जिसमें कर्त्तव्य (या कर्म) की प्रधानता है। उदाहरणार्थ परशुराम के माता-पिता ब्राह्मण होने पर भी कर्म से क्षत्रिय होने के कारण वे राजर्षि कहलाए तथा जन्म से माता-पिता क्षत्रिय होने पर भी कर्म से ब्राह्मण होने के कारण विश्वामित्र जी ब्रह्मर्षि कहलाए। वेद के अनुयायी महर्षि दयानद ने इसी सिद्धान्त का अनुमोदन किया है। उनके अनुसार मनुष्य जन्म से नही कर्म से महान बनता है।

तुलसी के 'राम' का स्वरूप त्रिभावात्मक है। एक भाव के अनुसार वे अहंकार का त्याग तथा निष्काम भाव के ग्रहण के द्वारा शान्ति प्रदान करते है। द्वितीय भाव के द्वारा वे निष्काम भाव से समस्त जगत की सेवा करने की प्रेरणा देते हैं तथा तृतीय भाव के द्वारा वे एक अनुकरणीय आदर्श चरित्र भी प्रस्तुत करते हैं। क्रम-विपर्यय से कह सकते है कि कवि ने राम के द्वारा आदर्श-अनुकरण, लोकसेवा तथा आत्म शान्ति की प्रेरणा प्रदान की है।

तुलसी ने समन्वय के द्वारा अपने काव्य मे समस्त श्रेष्ठ विचारो को लाने का प्रयास किया है। इसके लिए भी कवि ने 'राम'-नाम को आधार बनाया है। सगुण तथा निर्गुण दोनो भक्ति पद्धतियो का समन्वय केवल 'राम' नाम के द्वारा कराकर कवि ने अद्वितीय कौशल का परिचय दिया है। कवि का कथन है कि ब्रह्म के दो स्वरूप होते हैं-एक को सगुण कहते हैं तथा दूसरे को निर्गुण। इन दोनो स्वरूपो के विषय मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है परन्तु राम का नाम ऐसा है जिसका प्रयोग दोनो ही करते हैं। अस्तु इन दोनो के मध्य समन्वय स्थापित करने का कार्य रामनाम ही कर सकता है। कवि ने यहा तक कहा है कि 'राम' नाम इन दोनो के बीच दुभाषिए का काम करता है।

यथा—

देखिअहि रूप नाम आधीना।
रूपग्यान नहिं नामबिहीना॥
रूपबिसेष नाम बिनु जाने।
करतलगत न परहिं पहिचानें॥
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे।

आवत हृदय सने बिसेखे ।।
नाम-रूप-गति अकथ कहानी ।
समुझत सुखद न परति बखानी ।।
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी ।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ।।
(रामचरितमानस/बालकांड/२१/२-४)

कवि का समन्वय केवल भक्ति के मार्ग तक ही सीमित नही है। कवि ने भाषा के क्षेत्र मे भी समन्वय स्थापित किया है। भारतीय जनता जिस भाषा को सरलता से समझ सकती है वह भाषा तुलसी के काव्य के अतिरिक्त अन्य किसी महाकवि के काव्य मे उपलब्ध नही होती। इस दृष्टि से तुलसी सर्व-श्रेष्ठ कवि है।

कवि के काव्य की एक अन्य विशेषता उसकी मर्यादा के प्रति अत्यन्त आकर्षण है। समाज की प्रतिष्ठा उसके मर्यादा-पालन पर ही निर्भर है। इसके साथ ही ऐसे साहित्य को ही समाज मे आदर प्राप्त होता है जिसमे अशलीलता न हो। इस दृष्टि से तो यहाँ तक कहा जा सकता है कि तुलसी का काव्य अपनी उपमा नही रखता तुलसी के काव्य को पिता पुत्री को पढा सकता है जबकि अन्य महाकवियो के काव्य को पढाना कठिन है। उनमे शृंगार के ऐसे स्थल अवश्य मिल जाते है जो मर्यादित नही कहे जा सकते जबकि तुलसी के काव्य मे एक भी ऐसा स्थल उपलब्ध नही होता।

अस्तु हम कह सकते है तुलसी हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि है। उनकी कविता का जितना प्रचार देश-विदेशो मे हुआ है उतना हिंदी के किसी दूसरे कवि का नही हुआ। अस्तु उनका नाम अमर है।

—०—

वैदिक धर्म की विशेषता

ले०—डॉ० हरिदत्त पालीवाल
'निर्भय' पी-एच०डी०

(आज के युग मे "आर्य" और "हिंदू" को पर्यायवाची मान लिया गया है। यह मन्तव्य कहाँ तक सही है, यह मतभेद का विषय हो सकता है। संभवत क्यो, निश्चय ही आर्यसमाज के अनुयायी इस मत के पोषक नही होगे। कईयो के विचार से "हिन्दू" शब्द आर्यो के लिए मुसलमानो का दिया तथा "काफिर" अर्थ का वाचक है, इसलिए आर्यों के लिए "हिन्दू" शब्द का प्रयोग अनुचित है। पर ये सभी मत अपने-२ वैयक्तिक दृष्टिकोण के निर्देशक है। प्रस्तुत लेख मे लेखक ने "आर्य" शब्द का बहुत व्यापक अर्थ लेकर उसका क्षेत्र वेदो से आज तक माना है। इस लेख में लेखक ने आर्य धर्म का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है, वह माननीय है।)

आर्यत्व या आर्य धम की कोई निश्चित व्याख्या करना तथा उसके आधुनिक दृष्टिकोण और दर्शन को सरल पर सार गर्भित शब्दो मे प्रस्तुत करना कठिन है। इसके कारण की खोज करने के लिए हमे दूर जाने की आवश्यकता नही है। ऐसा कोई आर्य धर्म ग्रंथ नही है जिसके बारे मे यह कहा जा सके कि वह आर्य धर्म के आदर्श पर चरमोवित करता है, अथवा आर्य धार्मिक-भावो को पूर्णतया अपने अन्दर समेटे हुए है। ऐसा कोई भी ईशदूत, अवतार अथवा दैवी मानव आज तक नही हुआ, जिसके बारे मे यह कहा जा सके कि वह दैवी ज्ञान का एकमात्र व्याख्याता और ईश तथा मनुज के बीच एकमात्र सेतु है। जो आर्य धर्म पर अधिकार पूर्वक अपने विचार व्यक्त करना चाहता है, उसे सर्वप्रथम आर्य धार्मिक साहित्य के सागर का मन्थन करना होगा तथा सामान्य आर्य जीवन मे अप्रत्यक्ष रूप से जो भाव ओत प्रोत है उन भावो को ग्रहण करने के लिए उस जीवन के निकटतम सम्पर्क मे आना होगा।

तथापि जिसका जन्म और लालन पालन एक न्यूनाधिक धार्मिक वृत्ति वाले परिवार मे हुआ है, परिणामस्वरूप जिसने आर्य धर्म के भावो को थोडा

बहुत जाना और समझा है तथा जो तत्त्वचिन्तन के क्षेत्र मे भी प्रवेश पा चुका है, उसके लिए यह सभव है कि वह स्थूल रूप से आर्य धार्मिक वृत्ति को तथा आर्य धर्म के आधार को अभिव्यक्त कर सके। तो भी उसका यह प्रयत्न किन्ही मर्यादाओ से अवश्य बधा हुआ रहेगा। साथ ही उसे इस बात को भी स्वीकार करने के लिए तैयार होना होगा कि उसके द्वारा व्यक्त किए गए विचारों में आर्य धर्म-साहित्य के रथी और धर्म तत्त्व के विशेषज्ञो द्वारा सशोधन भी किए जा सकते है। मतलब यह कि वह अपने विचारो को अन्तिम मानकर यह आग्रह न करे उसके विचारो को सभी लोग स्वीकार करे। कहने की आवश्यकता नही, कि इस लेख का लेखक अपनी मर्यादाओ को स्वीकार करता है और अपने लेख मे सशोधन की सभावनाओ को भी स्वीकार करता हुआ खुले दिल से सशोधन के लिए अपने निबन्ध को प्रस्तुत करता है।

कुछ लोगो ने आर्य धर्म को नास्तिकता से पूर्ण भोगवादी बताया, तो किसी ने उसके मूर्तिपूजा के पक्ष को लेकर उसकी आलोचना की, तो कुछ ने उस धर्म पर तथाकथित निराशावाद, भाग्यवाद तथा अकर्मण्यतावाद का आरोप लगाकर उस धर्म के विरुद्ध अपनी धारणाओ को प्रकट किया तथा आर्य धर्म के प्रति अवमानपूर्ण विचार भी व्यक्त किए। पर आर्य धर्म पर उपरोक्त सभी आलोचनाये जहा तहां से प्राप्त तथा असन्तोषजनक रीति से विश्लेषित तथ्यो पर ही आश्रित होती है। ऐसे समय आलोचक यह भी भूल जाते है कि प्राणमय जीवन दर्शन किसी एक विशिष्ट जाति, युग या देश की सम्पत्ति नही होता, बल्कि ऐसा जीवनदर्शन सर्वत्र और सब समय जन्म लेता रहता है। कोई व्यवस्था हर दृष्टि से पूर्ण तथा व्यापक नही हो सकती। हर व्यवस्था मे अपवादो की सभावना अवश्य रहती है। पर साथ ही यह भी सत्य है कि किसी सस्था या धर्म मे कितने भी दोष हो, तो भी उसमे ऐसे अनेक मूल्यवान् तत्त्व अवश्य रहते हैं कि जिनके कारण उस सस्था या धर्म की कीमत पहचानी जा सकती है। केवल थोड़े से–दोष के कारण किसी संस्था या धर्म की सर्वतोमुखी निन्दा अनुचित और आलोचक के सकुचित मनोवृत्ति का द्योतक है। आर्यधर्म के पक्ष मे यह बात तो नितान्त सत्य है कि यह धर्म अत्यन्त उदार है, यह मानवता की विशालता तथा सत्य की अनेक पक्षीयता मे विश्वास करता है। (सत्य का एक ही पक्ष मानना सत्य को सकुचित बनाना है, जबकि सच्चाई यह है कि सत्य हमेशा बृहत् ही होता है।) आर्य धर्म कभी भी कतिपय जड–सिद्धान्तो की सीमा मे कुठित नही होता, अपितु सदा नूतन व्यवस्थाओ, नये सयोजनो एव मौलिक-जीवनदर्शनो का स्वागत करने के लिए सदा तत्पर रहता है। इसी कारण इस आर्यधर्म को सनातन धर्म भी कहा जाता है। अर्थात् यह वह धर्म

है जो सदा से है और सदा रहेगा। इसका सनातनत्व ही वह तत्त्व है कि जो आर्यधर्म की उस शक्ति की व्याख्या करता है जिस शक्ति के कारण यह धर्म इतर धर्मों को आत्मसात् करके आत्मरक्षा भी करता है। प्रश्न यह है कि यदि आर्य धर्म इतना शक्तिशाली है, तो उसके अनुयायियो की आज यह अवनति क्यों? उत्तर है-आर्य धर्म के अनुयायियो को अपने एक ध्येय को छोड़कर चतुर्मुखी प्रवृत्ति हो उनकी अवनतिका कारण है। एक मनुष्य कुछ मील पूर्व दिशा मे चले, कुछ मील दक्षिण दिशा में चले, कुछ मील पश्चिम मे चले और कुछ मील उत्तर मे चले, तो वह अपनी मजिल पर तो पहुंच ही नही सकता, साथ ही उसकी गति में मन्दता आ जाएगी। इसी तरह आर्य धर्म मे भी चतुर्मुखी प्रवृत्ति होने के कारण उसकी गति मे मन्दता आ गई, लिहाजा आर्य-धर्म को लोग निराशावादी, भाग्यवादी अकर्मण्यतावादी आदि न जाने क्या क्या समझ बैठे।

यहा तक जो कुछ लिखा गया, उससे आर्यधर्मभाव या धर्मवृत्तिकी दो विशेषताये तो स्पष्ट हो जाती है—(१) आर्यधर्म में उदारता का भाव तथा कट्टरता का अभाव, (२) परिवर्तन के प्रति आस्थावान् होते हुए भी किसी नवीन सिद्धान्त को सहसा अपनाने मे अरुचि।

आर्यधर्म की एक और भी विशेषता है। यह विशेषता है—उसकी अटपटी वाणी, परमेशको अनेक परस्पर-विरोधी गुणो से मडित करने का प्रयत्न तथा उसकी यह मान्यता कि एक जीवनवृष्टि तथा जीवनमार्ग भी उतने ही सत्य हो सकते है जितने कि दूसरे। आर्यधर्म की इस विशेषता ने अनेक विदेशी पर्यवेक्षको को चक्कर में डाल दिया और वे आर्यधर्मकी सत्यनिष्ठा के प्रति शकालु बन गये। अन्तिम विशेषता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आर्यधर्म दूसरे धर्मों से विरोध नही करता, क्योकि यह धर्म दूसरे धर्मों मे निर्दिष्ट मार्गों मे भी सत्य का दर्शन करता है। आर्यधर्म अन्य धर्मों के समान दुराग्रही तथा कट्टरपथी नही है। आर्यधर्म का प्रमुख स्वर यही प्रतीत होता है कि प्रत्येक जन अपनी क्षमता, रुचि और विकासस्तर के अनुसार आचरण करे। आर्यधर्म स्पष्टतया इस बात को स्वीकार करता है कि बहुरगी मानव-स्वभाव एक ही साचे में नही ढाला जा सकता, इसलिए मुक्तिमार्ग एक न होकर अनेक है।

इसप्रकार वैदिकधर्म मे सहिष्णुता है, उदारता है, विशालता है और इतर

धर्मानुयायियो के प्रति सहानुभूति है। इसलिए वैदिकधर्म को सबधर्मों का समन्वय ग्रथवा एक सार्वभौम धर्म कहा जा सकता है। वैदिकधर्म अपने उद्भव के लिए किसी ग्रवतार, पैगम्बर या तवीका ऋणी नही है, न वह किसी एक धर्मग्रथ पर वह टिका हुग्रा है, वह धर्म तो वस्तुत. एक चयनमूलक समष्टि है। वैदिकधर्म उन सब विभिन्न मतों, ग्रौर मार्गों की एक सग्रहात्मक सज्ञा है, जिन्होने समय-समय पर भारत को उद्वेलित किया, भले ही यह उद्वेलन या जागरण सगठित देशव्यापी ग्रान्दोलनो के रूप मे हुग्रा हो, या जहा तहा छिटपुट रूप मे। इन समस्त भिन्नतामूलक तत्त्वो से वैदिकधर्म का कलेवर बना है। उक्त समस्त तत्त्वो को "वैदिकधर्म" इस ग्रभिधानने एक सघीय एकता मे गुफित कर दिया है ग्रौर उन्हे एक समजातीयता की भावना प्रदान की है। इसके ग्रतिरिक्त वैदिकधर्मान्तर्गत विभिन्न मतो ग्रौर सम्प्रदायो मे कुछ ग्रन्य भी सामान्यसूत्र है जोकि इन मतो ग्रौर सम्प्रदायो पर विशिष्ट एकता की छाप लगाते हैं ग्रौर उन्हे एक ही समष्टि के विभिन्न ग्रगो के रूप मे दर्शाते है। वैदिकधर्म इस प्रकार एक समष्टिगत धर्म होते हुए भी इसकी ग्रपनी स्वतत्र सत्ता है।

यहा हमे एक भय के प्रति सचेत रहना है। वह भय यह है–हम देख चुके है कि वैदिकधर्म विभिन्न मतो की समष्टि होने के कारण इसमे भिन्न ग्रौर बहुरगी तत्त्वो मे कुछ तत्त्व उच्चश्रेणीय है ग्रौर कुछ निम्नश्रेणीय, ग्रत यहा हमे इस भय के प्रति सचेत रहना है कि वैदिकधर्म की व्याख्या इन निमश्रेणीय तत्त्वो के ग्राधार पर न की जाये। (कई बार ऐसी व्याख्या करने का प्रयास किया गया, ग्रौर वैदिकधर्म का स्वरूप ही विकृत हो गया।) वैदिकधर्ममे निहित उच्च तत्त्वो की कभी भी ग्रवहेलना न की जाये। वैदिकधर्म मे निहितनिम्न श्रेणीय तत्त्वो केग्राधार पर उसकी व्याख्या करना उसकी एकागी व्याख्या ही होगी। ऐसी व्याख्या मानवीय दुर्बलता का एक दृष्टान्त है। इसी दुर्बलता से प्रेरित होकर मनुष्य ग्रसावधानी पूर्वक सामान्यनियम स्थापित करता है ग्रौर ग्रपर्याप्त ग्राधार पर उतावलेपन से ग्रपने मत निर्मित करता है। समय-समय पर कई ग्रान्दोलनो ने जन्म लिया, जैसे ब्रह्मसमाज, ग्रार्यसमाज। इन्होने वैदिकधर्म से उन ग्राक्षेपणीय तत्त्वो को दूर करके हिन्दूसमाज की धार्मिक चेतना को परिष्कृत करनेका प्रयास किया, परन्तु किसी न किसी कारणवश ये ग्रान्दोलन हिन्दूजाति को समग्र रूप से जगाने में ग्रसफल रहे। इसी कारण ग्राज भी हिन्दूधर्म मे परिष्कार करके उसे जागृत ग्रावश्यकता बनी ही हुई है।

वैदिकधर्म का ईश्वर के स्वरूप के प्रति दृष्टिकोण ग्रपना निराला है। वह

मनुष्य को सृष्टि के प्रति एक अनोखा भाव रखने के लिए उपदेश देता है तथा मानव-व्यवहार का एक अनूठा सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। ईश्वर के स्वरूप के प्रति वैदिक धर्म का सामान्य दृष्टिकोण यह है कि वह ईश्वर को परम पुरुष मानता है, जिसने उद्देश्यपूर्वक जगत् को सृष्टि की है और जो जगत का पोष और शासक है। ईश्वरको सर्वगत, निराकार और निस्पृह ब्रह्म माना गया है। ईश्वर के स्वरूप तथा ईश्वर और जगत् के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में वैदिक धर्म मे अनेक दृष्टिकोण मिलते है, ये ऊपर से भिन्न भिन्न दिखाई देने पर भी इनका आन्तरिक भाव एक ही है।

इस ईश्वरवादी विश्वास ने कि परमेश एक चैतन्ययुक्त पुरुषोत्तम के रूप में समस्त प्रकृति मे व्याप्त है, आर्यों मे एक सर्वगत श्रद्धाभाव का निर्माण किया है। यह भी सभव है कि इसी विश्वास ने अहिंसा के सिद्धान्त के विकास मे योग दिया हो और वैदिक धर्म को इतनी व्यापकता प्रदान की हो कि उसने सभी पशु और प्रस्तरादि जड पदार्थों में ईश्वर के सर्वव्यापत्व को स्वीकार किया। जैसा कि आज अनेक हिन्दु कहते है कि एक मूर्ति अथवा किसी पशु या अन्य प्राकृतिक भूत की पूजा करने मे हम वस्तुत उस परमात्मा की पूजा करते है जो कि समस्त प्रकृति मे व्याप्त है। पर मूर्तिपूजा अथवा पशुपूजा आदि के पक्ष मे कुछ भी कहा जाए, यह तथ्य अकाट्य है साधना का आधिक्य एक प्रकार के शैथिल्य को जन्म देता है तथा मन को धर्म के सत्यभाव से वियुक्त करता है।

वैदिक धर्म को ब्रह्मवादी प्रवृत्ति की भी अपनी विशेषता है। इस वादेन ने वैदिक धर्म मो एक शान्तता प्रदान की है तथा वह समदृष्टि भी दी है, जिसके भीतर ऊंच-नीच, सुख-दुख आदि समस्त भेद तिरोहित हो जाते हैं। निस्सन्देह ससार मे अत्यधिक आसक्ति को नियमित करने के साधन के रूप में ब्रह्मवाद का एक मूल्य है, क्योकि यह सिद्धान्त मानव मन की सासारिक वस्तुओ की निस्सारता के भाव से अवश्य भरेगा, परन्तु जैसा कि अनुभव ने अनेक बार बताया भी है, यह स्पष्ट है कि उक्त सिद्धान्त के प्रति विशिष्ट आग्रह हमारी जीवनोन्मुखी प्रवृत्ति को शिथिल कर देगा तथा हमे अनेक निर्विवाद नैतिक मूल्यो जैसे-प्रेम, त्याग, सेवा आदि के प्रति भी उपेक्षापूर्ण बना देगा।

वैदिक धर्म में स्वभाववाद का प्रभाव उस सुविख्यात कर्मसिद्धान्त में है, जिसके अनुसार मानव-भाग्य का निर्माण एक अयंयांत्रिक रूप में इस जगत् में उसके द्वारा किए गए कर्मो से भागवत हस्तक्षेप से स्वतत्रतापूर्वक होता है। कुछ विद्वानो ने कर्मसिद्धान्त पर ये आक्षेप किए है-(१) यह सिद्धान्त पथभ्रष्ट के

मोक्ष के लिए कोई द्वार खुला नही छोड़ता । (२) यह सिद्धान्त ऐसे पथभ्रष्टो के प्रति लोगो को उदासीन बना देता है (३) वे लोग सोचते है कि ये दु खी जन तो अपने पूर्वकृत कर्मों के कारण ही दुःख भोग रहे है, अत. इसमे कोई क्या कर सकता है ? ये दु ख तो इन्हे भोगने ही पड़ेंगे । (४) इस प्रकार सुखीजन दु खी-जनो की सहायता करने के लिए कभी आगे नही आएगे । इस प्रकार सारा नीतिशास्त्र (Ethics) व्यर्थ हो जाएगा ।

उनके ये आक्षेप इसी कारण है कि उन्होने कर्मसिद्धान्त की व्याख्या बहुत हा सकुचित तथा सीमित अर्थों मे की है । यदि 'कर्म' शब्द के अर्थ को विस्तृत किया जाए और कर्म के अन्तर्गत मनुष्य के बाह्य व्यापारो के साथ साथ आन्तरिक भावनाओ, अभिवृत्तियो और सकल्पो को भी शामिल कर लिया जाए, तो कर्मशासन के अधीन मानव-जीवन का चित्र वैसा रुक्ष, कठोर तथा नीरस नही दीखेगा । क्योकि किसी दुष्कर्म को करने के बाद होने वाले पश्चात्ताप तथा उसके बाद से सदा सत्कर्म करने का सकल्प आदि उन शक्तियो को जन्म दे सकते है, जो उपरोक्त दुष्कर्म के उदीयमान कुफलो को बाधित या नष्ट कर देगी । दूसरी ओर जब सुखीजन भी इस बात की कल्पना करेंगे कि वे भी अपने कर्मों के परिपाकस्वरूप इसी प्रकार कभी दु ख में पड सकते है और उस अवस्था मे उन्हें भी दूसरो की दया तथा सहानुभूति की आवश्यकता होगी, तो वे भी दूसरों के प्रति दया तथा सहानुभूति का भाव दिखायेंगे ।

कर्म सिद्धान्त का पूरक पुनर्जन्म सिद्धान्त है । यह अनिवार्य नही है कि किसी व्यक्ति के कर्मों के समस्त परिणाम एक ही जीवन की सीमाओ मे भोग लिए जाएं । सामान्यत. यही होता है कि एक जन्म मे किए गए कर्मो मे से कुछ के परिणाम दूसरे जन्म मे भोगने के लिए छोड दिये जाते है । इस प्रकार एक जीवात्मा को अनेकानेक जन्मों की शृ खला मे तब तक बधना होता है, जब तक कि उसके कर्मों का आयव्यय बराबर न हो जाए । कर्मों के आयव्यय के बराबर हो जाने पर जीवात्मा पुनर्जन्म के बधन से मुक्त हो जाती है और परमात्मा में लीन हो जाती है । पुनर्जन्म सिद्धान्त के गुणावगुण कुछ भी हो, कम से कम यह सिद्धान्त एक सुन्दर ढग से इस जगत मे दृष्टभाग्य-भेदो की व्याख्या करता है । इसके अतिरिक्त इसकी सत्यता पर प्रकाश डालने वाले साक्ष्य की भी कमी नही है प्रस्तुत स्थल पर वैदिक धर्म ईसाई तथा मुसलमान धर्म से बहुत भिन्न है, जिनके मत मानवात्मा की मृत्यु-परवर्ती दशा के विषय में नितान्त भिन्न हैं ।

कर्म सिद्धान्त से भिन्न और उसकी अपेक्षा अधिक व्यवहारमूलक निष्काम-कर्म-सिद्धान्त है। निष्काम-कर्म-सिद्धान्त गीता की शिक्षा का मूलमत्र है। सक्षेपत उक्त सिद्धान्त यह है कि यह देखते हुए कि कर्म ही जीवन की आत्मा है निष्क्रियता अथवा अनिर्णीतता अनुचित है और प्रत्येक व्यक्ति को दृढसकल्पपूर्वक कर्म करना चाहिये, परन्तु उसके किसी कर्म में कर्म-फल विषयक चिता नही होनी चाहिये। मनोविज्ञान यहा एक प्रश्न उठा सकता है— क्या कर्म करने मे किसी व्यक्ति की मानसिक दशा नितान्त रूप से निस्पृहता की हो सकती है और क्या उसके मन मे कही पर कोई ठोस लक्ष्य नही होगा ? उत्तर मे कहा जा सकता है कि मात्र कर्तव्य पालन से प्राप्य आनन्द के रूप मे ठोस लक्ष्य होगा और प्रस्तुत सदर्भ में निस्पृहता का अर्थ केवल कर्तव्य-कर्म में सकुचित स्वार्थ की दृष्टि का अभाव है। कोई यहा यह प्रश्न भी कर सकता है, कर्तव्य क्या है एव कर्तव्य के विषय मे गीता क्या कहती है ? वस्तुत गीता इस प्रश्न को अधिकाशत अनुत्तरित छोड देती है, कारण कर्तव्य का सर्वदा पूर्व—निर्धारण नही किया जा सकता और कर्तव्य किन्ही विशिष्ट परिस्थितियो पर निर्भर होता है, परन्तु एक सर्वोच्च कर्तव्य, कर्तव्यो के कर्तव्य का वह अवश्य निर्देशन करती है और वह कर्तव्य है "अपने समस्त कर्मो मे एकान्तत. स्वार्थ-मय भावनाओ का त्याग।" यह प्रश्न भी किया जा सकता है कि किसी व्यक्ति को स्वार्थहीन क्यो होना चाहिये एव स्वार्थ शून्यता के आदर्श का तार्किक आधार क्या है ? उक्त प्रश्न का यह उत्तर हो सकता है कि स्वार्थशून्यता अपने मे ही शिवम् है तथा अपनी तर्कसगतता के निमित्त वह अपने से परे किसी पदार्थ की अपेक्षा नही करती। यहा यह कहा जा सकता है कि गीता व्यवहार के एक भव्यतम् सिद्धान्त की व्याख्या करती है और यह ठीक ही है जो वह प्रबल आकर्षण की जननी बनी है, केवल भारत मे ही नही परन्तु अनेक सभाओ मे अन्यत्र भी।

यद्यपि गीता निष्काम कर्म सिद्धान्त को सर्वगत अपौरुषेय जगदाधार के तान्त्रिक सिद्धान्त पर छोड देती है, तथापि उक्त सिद्धान्त की व्याख्या परमेश विषयक उस अन्य सिद्धान्त के आधार पर भी की जा सकती है जिस सिद्धान्त के अनुसार परमेश एक महान् कलाकार या एक महान् खिलाडी है जो कि क्रीडा-निमित्त एव स्वान्तर्गत आनन्द बाहुल्य अथवा उल्लासमय प्रेम के आधीन जगत् को उत्पन्न करता है। यह देखते हुए कि समस्त मानव कृत्यो व भावो की सत्य तथा फलप्रद होने के निमित्त चरमतत्त्व की ओर निहारता है, यह स्पष्ट है कि इन कृत्यो व भावो के अचल मे स्वार्थहीन प्रेम होना चाहिए।

भिन्न और परस्पत विरोधी दीखने वाले विचारो को मिलाने की, तथा किसी वस्तुत व्यापक और सर्वतोमुखी दर्शन निर्माण की दिशा मे वैदिक-मनोवृत्ति ने जो परिश्रम किया है वह अनेक उन सूत्रो, बीजाक्षरो, एव सक्षिप्त वाक्यो मे व्यक्त है जोकि लगभग आर्यो के जिह्वाग्र पर वास करते हैं और तनिक क्षोभ के सयोग से ही वाणी के रूप मे निकल उठते है। एक ऐसा सूत्र है—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और इसका तात्पर्य है कि जीवनोद्देश्य चतुर्मुख होता है जिसमे पोरपकार, अर्थोत्पादन, इन्द्रियजन्यसुख तथा मोक्ष होते है। एक अन्य सूत्र है—कर्म, ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग, भक्तिमार्ग यानी आत्म लाभ के तीन वैकल्पिक मार्ग होते है—ज्ञानप्रधान मार्ग, कर्मप्रधानमार्ग एव भक्तिप्रधानमार्ग। एक तीसरा सूत्र जो कि एक सुसंगठित एव सुनियोजित जीवन के चार आश्रम-स्थलो को निर्दिष्ट करता है जो कि निम्नोक्त है—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, सन्यास। इस सूत्र अथवा सक्षिप्त दर्शनोक्ति के अनुसार एक सुनियोजित जीवन के चार क्रमिक भाग हैं जो साधारण शब्दो मे इस प्रकार बतलाये जा सकते है-- इक लौकिक जीवन की तैयारी, इह लौकिक जीवन, पारलौकिक जीवन की तैयारी, पारलौकिक जीवन। इत्यादि २॥

वैदिकधर्म पर्वो, उत्सवो और तज्जनित उल्लासानुभूतियो की परम्परा से विभूषित है। वैदिकधर्म के उत्सव व समारोह अधिकाशत प्रकृतिकी विभिन्न भावभगिमाओ के चतुर्दिक् घूमते है और एक आर्य के प्रकृति-प्रेम तथा प्रकृति-जीवन और मानव-जीवन की सहचारिता के उसके भाव को प्रकट करते है। यह वैदिकधर्म का प्रकृति-प्रधान पक्ष है और वैदिकधर्म की उन मान्यताओं की ओर सकेत करता है जिन मे से एक यह है कि मानवात्मा तथा प्रकृति दोनो मे एक ही परमजीवन है और इस प्रकार दोनो वस्तुत अभिन्न है, तथा एक दूसरी वह है जिसके अनुसार परमेश एक विनोदप्रिय प्रेमी तथा सृष्टिकर्ता है। वैदिकधर्म का यह प्रकृति-प्रधान पक्ष कतिपय सीमाओ के अन्दर एक स्वस्थ और सामान्य वस्तु है, परन्तु यह स्पष्ट है कि इसकी प्रबलता लोगो की जीवन के गभीर रूप के प्रति उपेक्षापूर्ण बना सकती है तथा उनमे एक उथलेपन के भाव को जन्म दे सकती है। आर्यो की प्रकृति के प्रति उक्त रागात्मक वृत्ति और प्रकृति के भिन्न विलासो मे उसके साथ उन्मुक्त साहचार्य्य, प्राचिन यूनानी प्रकृति-पूजा की ओर सकेत करते है और तुलना तथा पारस्परिक आदान-प्रदान के प्रश्नो को उठाते है, परन्तु यह सब प्रस्तुत निबन्ध के विषय-वृत के बाहर की बातें है।

वैदिकधर्म के शब्द (पद) 'धर्म' ने अपने ठीक अर्थ के सम्बन्ध मे न

केवल ग्रार्येतरो वरन् ग्रनेक ग्रार्यों के समक्ष भी कुछ कठिनाई प्रस्तुत की है। ग्राजकल 'धर्म' इस पद का प्रयोग ग्रग्रेजी पद 'रिलीजन' के समानार्थक पद के रूप में किया जाता है, ग्रौर रिलीजन' के समान वैयक्तिक ग्रास्थाग्रो तथा सगठित सार्वजनीन-सम्प्रदायो-का निर्देश करता है। वैदिकधर्मशास्त्रो मे कभी तो इस 'धर्म' पद का प्रयोग सामान्य-मानव कर्त्तव्य के ग्रर्थ मे होता है ग्रौर कभी केवल ग्रातिगत ग्रथवा बर्णगत कर्तव्य के ग्रर्थ मे। इस शब्द के ग्रन्य ग्रर्थ भी है। परन्तु उन सब ग्रर्थों मे प्रवेश एक विशिष्ट समीक्षा का विषय होगा।

वैदिकधम एक प्रकार के नैसर्गिक तथा पूर्व योजनापूर्ण स्वतन्त्र विकास का विषय रहा है। ग्रपने वर्तमान रूप मे यह एक जटिल, लम्बी-चौडी, विशिष्ट रूप-रहित ग्रटपटी प्राचीन संस्था है, यद्यपि इसकी कोख मे एक तात्त्विक, सप्राण इकाई है; ग्रौर वही वस्तुत 'ग्रार्यत्व' द्वारा इगित धर्म है, ऐसा कहा जा सकता है। वैदिकधर्म की एकान्त ग्रावश्यकता है उसका पुनर्गठन, उसके बिखरे हुए विचारों ग्रौर सम्प्रदायो, ग्रश्रृखलित परिपाटियो ग्रौर प्रथाग्रो ग्रादि की एक सुनियोजित ग्रनुक्रम मे सजोना। देखना है कि वैदिकधर्म ग्रपने विलक्षण ग्रौदार्य ग्रौर विस्तृत दृष्टिकोण को ग्रक्षुण्ण रखता है, ग्रथवा ग्रपने नव-सगठन-जनित उत्साह की भूमिका मे सकुचित ग्रहकारकी धाराग्रो मे बह जाता है, ग्रथवा विश्व मे एक रूप, मत ग्रौर ग्राराधना के हेतु वह एक विस्तृत ग्रान्दोलन के नितान्त सक्रिय रूप को धारण कर लेता है।

—o—

.वैदिक सस्कृति का मर्म स्पष्ट करने वाली कहानी

मृत्यु के कालदूत पृथ्वी पर आये

ले०—डॉ० रामचरण महेन्द्र, पी०एच०डी०

"यह देखो, यह पहला कालदूत असयम है, यह हरी आखोवाली ईर्ष्या, यह लाल नेत्रो वाला आवेश; यह मोटे पेट वाला लोभ, यह निष्ठुरता, यह अशिष्टता, यह तृष्णा और यह आलस्य है। ये आठो जहा रहेंगे, वहा मनुष्य धीरे-धीरे स्वय ही तुम्हारे मुह मे आ जाएगे।"

"अब मेरा कार्य हलका हो गया।" कहकर मृत्यु ससार मे उतर आई।

❀

मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्या कृत्रिमा शरू
पुरा नु जरसो वधीत्॥ —ऋग्वेद ८/६७/८०

अर्थात् हमारा जीवन इस प्रकार हो कि हम पूर्ण आयु प्राप्त करे। हमारी अकाल मृत्यु न हो, इसलिए हम सयमित जीवन जिये।

उस दिन ब्रह्माजी चिन्तित हो कर कुछ सोच रहे थे। मुख पर चिन्ता के चिह्न काले बादलो की तरह उभरे हुए थे। पहली बार वे विचारो मे डूबे हुए थे।

उनका मुख्य कार्य सृष्टि का नव-निर्माण है। वे सृष्टि के जन्मदाता है। अनेक प्रकार के जीवों को जन्म देना, उनके पालन पोषण की सुव्यवस्था और विकास की देखभाल उन्ही के जिम्मे रहती है। बडी ही उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है उनका!

यदि जीवो के उत्पादन और विकास के क्रम मे कमी आ जाय, तो सृष्टि

ही ग्रन्त हो जाय ! ब्रह्माजी को यही ध्यान रहता कि जीवो के निर्माण मे कमी न ग्राये। वे ग्रपना सारा समय निकाल सृष्टि को बढाने मे ही लगे रहते। सृष्टि हर प्रकार भरीपूरी रहे, यही उनकी इच्छा रहती थी।

जहा ग्रौर जीव बढे, वही मानव-समुदाय भी बढे—ब्रह्माजी ने यह ध्यान रखा था। उन्होने मानव-समाज के प्रजनन बढते रहने का उपक्रम किया था। ऐसी मोहक-मादक कामोत्तेजक प्रवृत्तिया प्रोत्साहित की थी कि प्रजनन बढता रहा। मनुष्यो की सख्या उत्तरोत्तर ग्रभिवृद्धि पर रही। जैसे एक माली को ग्रपने खेत को लहलहाता, पुष्पित फलित होते देखकर ग्रानन्द होता है, उसी प्रकार ब्रह्माजी मनुष्यो की सख्या बढते देख कर ग्रह्लादित होते रहते थे। एक समय ऐसा ग्राया कि वे जितनी जनसख्या चाहते थे, उतनी पूरी हो गई। ग्रब वे सतुष्ट हो गये कि सृष्टि का ग्रन्त नही होगा।

लेकिन मनुष्यो ने प्रजनन कर्म पुरानी गति से फिर भी जारी रखा। उनकी भोगविलास की कामुक प्रवृत्तियो पर कोई रोकथाम न रही। वे दिन रात प्रजनन सम्बन्धी निद्यकायो मे ही लगे रहते, फलस्वरूप जनसख्या ग्रना-पशनाप बढने लगी। भोजन मे कमी पडने लगी। ब्रह्माजी ने चाहा कि ग्रब जनसख्या पर कुछ रोकथाम लगे, ग्रन्यथा मनुष्यो को भूखा रहने को विवश होना पडेगा ! वे ग्रपने ही बनाये मनुष्यो को क्षुधा-पीडित देख कर करुणापूरित हो उठे !

ग्राज वे प्रजनन बढते रहने से चिन्तित बैठे जनसख्या के नियत्रण पर विचार कर रहे थे। "इस ग्रनियत्रित ग्रभिवृद्धि की रोकथाम कैसे हो ?" उनके स्वर मे भुभलाहट थी !

यकायक क्षितिज पर उदित होती हुई रश्मि की तरह एक नया विचार उनके मनमे ग्राया, "कोई ऐसी शक्ति हो, जो बरबस जनसख्या पर नियत्रण करे। ग्रनापशनाप बढती हुई जनसख्या को रोकने के लिए कोई ऐसी ताकत हो, जो भोजन ग्रौर निवास के ग्रनुपात मे जनसख्या को सन्तुलित कर दे !"

बहुत सोचकर उन्होने ग्रपने तपोबल से मृत्यु को जन्म दिया। मृत्यु एक नवोढा युवती के रूप मे ब्रह्माजी के सामने खडी थी। उसने ग्रपने पितामह को ग्रादर पूर्वक प्रणाम किया।

"पितामह ! मेरे जीवन का क्या लक्ष्य होगा ? मै इस संसार मे किसलिए पैदा की गई हूँ ?" मृत्यु ने जिज्ञासा प्रकट की।

"मै तो ससार का स्रष्टा हूँ। तरह तरह के अच्छे बुरे जीवो को बनाता रहता हूँ। मैने तुम्हे भी बना डाला।"

"फिर भी जन्म का कोई तो प्रयोजन होगा ही ?" मृत्यु बार बार पूछने लगी।

"तुम जिद कर रही हो।"

"हर व्यक्ति का कोई न कोई लक्ष्य है। जन्म का प्रयोजन है। मेरे जन्म का भी कोई छिपा हुआ गुप्त अभिप्राय होना ही चाहिए ?" मृत्यु ने पूछा।

"हा, है तो एक लक्ष्य।"

"वह क्या है, पितामह ? मुझे अपना काम बता दीजिये, जिससे खाली आलस मे न बैठकर अपना कार्य प्रारभ करू।"

"अब ब्रह्माजी को अपना अभिप्राय स्पष्ट करना पडा"

"मनुष्य-लोक में जनसख्या बडी तीव्रता से बढ रही है। प्रतिदिन हरक्षण कीडे मकोडो की तरह आदमी बढते जा रहे है। यहा तक कि उन्हे भूखे मरने की नौबत आ गई है। स्थान तक कम पडने लगा है अब।"

"यह तो आपकी सृष्टि है। आप जितना चाहें बढा सकते है।"

"लेकिन उसमे सन्तुलन भी रहना चाहिए। कुछ नियत्रण जरूरी है।"

"फिर मै क्या सहायता कर सकती हू, पितामह ? आज्ञा दे।"

मन मे उद्विग्नता लिए टीस भरी आवाज मे ब्रह्माजी बोले, मनुष्यो की अनियत्रित बढोतरी न होने पावे, इसलिए तुम सन्तुलन बनाये रखने की दृष्टि से उन्हें मार-२ कर परलोक मे भेजती रहा करो।"

"ओफ ! ऐसा निद्य ! लोगो को मारने जैसा बीभत्स दुष्कर्म ! पितामह, यह हिंसा का कर्म तो मुझसे न होगा।"

"यह तो सन्तुलन स्थिर रखने की दृष्ट से है।"

"पितामह, निरपराघ जीवो का वध करना कितना निर्दयतापूर्ण और कुत्सित है।" उसकी जिह्वा मे करूणा का स्वर था।

"जो जीव बच जायेगे, वे सुखी और स्वस्थ रहेगे।"

"क्या आजीवन मुझे सहार का ही पापकर्म करते रहना होगा ?"

मृत्यु ने पूछा। "क्या मुझे नित्य ही असख्यो का अभिशाप ओढना होगा ?"

थोडी देर के लिए मृत्यु कुछ आगे न बोल सकी। उसका कठ भर आया। उसका यौवन और सौन्दर्य आसुओ से भीग उठा। असख्य व्यक्तियो को मारने की हिसक कल्पना ने उसे विचलित कर दिया।

"ओ ! तुम तो रोने लगी।" सिर पर हाथ फेरते हुए ब्रह्माजी ने मृत्यु को सान्त्वना दी। वे आगे समझाते हुए कहने लगे, "इसमे तुम्हारा दोष नही है। खेतो से व्यर्थ के झाड, झखाड और खराब घास कूडा भी तो फेंका जाता है। सृष्टि का सन्तुलन स्थिर रखने के लिए पवित्र कर्म समझकर जनसख्या के नियत्रण का यह कार्य करो। इसमे तुम्हे कोई पाप नही लगेगा।"

"नही, मारने और जीवन पर्यन्त हिसा ही करते रहने का यह दुष्कर्म करने का साहस मुझ से न हो सकेगा। मारने का काम बडा घिनौना है। उसे कहने की हिम्मत नही बन पड रही है मुझसे। क्या कोई और अच्छा कर्म मेरे भाग्य मे नही लिखा है ? कुछ शुभ कर्म बताइये मुझे।"

"सृष्टि का नियत्रण भी बहुत महत्त्वपूर्ण कर्म है।" इसमें तुम्हें पाप न समझना चाहिए। तुम रोओ नही, स्थिति को समझो।

"मृत्यु रोती रही। दुष्कर्म करने को तैयार न हुई।"

"ओ ! तुम नेत्रो पर हाथ रखकर लगातार रो ही रही हो। कुछ सोचो

तो। यह तो कर्त्तव्य है। मैंने तुम्हे सर्वोपरि शक्ति बनाया है। तुम्हारे चुगुल से कोई न बचेगा। तुम जीव-जन्तु किसी को भी छोडोगी। तुम सबसे ऊपर हो।"

"पितामह, इस नरसहार से मुझे घृणा हो रही है।"

मृत्यु अपने चेहरे को हाथो से ढके हुए धेतुकाश्रम के समीप वाले वन में चली गई। वहा जाकर उसने घोर तप करना आरभ कर दिया।

उस तपस्या से ब्रह्माजी का आसन डोल उठा।

उन्हे फिर मृत्यु की स्मृति हो आई। वे दयार्द्र होकर धेतुकाश्रम पहुचे। देखा, वह तहस्या मे तप-२ कर आधी हो गई है।

दया और प्रेम से अभिभूत ब्रह्माजी ने प्यार से उस पर हाथ फेरा और पूछा, "पुत्री! तुम्हारे इस तप की क्या कामना है? मुझसे कहो। मैं उसे पूर्ण करूंगा।"

"पितामह, मुझसे हिसा जैसा वह कुत्सित दुष्कर्म न हो सकेगा, जो आपने मुझे करने को कहा है।"

ब्रह्माजी सुन रहे थे।

"पितामह, मैं निर्दोष प्राणियों का वध करूं ऐसी बुरी मेरी मन स्थिति नही है। मुझे इस पाप से बचाइये। यही इस तप का उद्देश्य है।"

"जिस उद्देश्य के लिए इसकी सृष्टि की है, यह उसी से बचना चाहती है। यह तो जटिल समस्या है।" यह सोचकर ब्रह्माजी असमजस मे पड गये।

उधर जनसख्या उसी तरह अनियत्रित गति से बढती जा रही थी। उसे रोकना आवश्यक था। वे करते भी क्या? बढती हुई प्रजा के नियमन के बिना सन्तुलन स्थिर रखने का कोई उपाय ही न था। उधर मृत्यु हिंसा के लिए तैयार न होती थी।

वे कोई दूसरा हल सोचने लगे।

❀

मुस्कराते हुए उन्होने मृत्यु के सामने एक दूसरा विकल्प रख दिया। "देखो, मै तुम्हारी सहायता के लिए आठ कालदूतो को पृथ्वी पर भेजता हू।"

"वे क्या करेगे ?" मृत्यु ने पूछा।

"कालदूत मनुष्यो के मन मे प्रवेश कर उन्हें भीतर ही भीतर खोखला करते रहेगे।"

"और मारने का काम कौन करेगा ?" आश्चर्य से मौत ने पूछा।

"इन कालदूतो के चगुल मे फसे रहने के कारण वे अपनी आग मे स्वय ही जलते रहेगे। इस प्रकार अब वे मरणासन्न हो जायेगे, तो क्लेश से शान्ति पाने के लिए मौत को स्वय ही पुकारने लगेगे।

"फिर पाप किसे लगेगा ?"

"इस अवस्था मे भला तुम्हे पाप क्यो लगेगा ? तुम तो पीडितो और मानसिक रोगियो को आश्रय दिया करोगी।"

"मेरा यह कार्य पाप या पुण्य, किस कोटिका माना जायेगा ?"

"तुम्हारा कार्य निष्ठुरता न रहकर दया और सान्त्वना का बन जायेगा"

"तब तो ठीक है। यह कार्य पाप न रहे तो मैं करना स्वीकार करती हू।" उसने कुछ हलकापन अनुभव किया।

ब्रह्माजी ने नेत्र मूद अपने आत्मबल से आठ कालदूतो को जन्म दिया। वे बडे विकरात रूप के थे। उनकी आकृति हिसा के दुष्कर्मसे मिलती जुलती थी।

"यह लो आठ कालदूत। वे तुम्हारी सहायता करेंगे।" ब्रह्माजी बोले।

"इनका परिचय तो कराइये, पितामह !"

"यह देखो, वह पहला कालदूत असयम है। जो इसके कब्जे मे आ जायेगा, वह धीरे धीरे स्वय तुम्हारे मुह मे चला जायेगा। वह मनुष्य खानपान, आचार व्यवहार, मद्यपान, जुआ खेलना तनिकसी बातो पर उत्तेजित होना आदि सर्वत्र विनाशकारी परिस्थितिया उत्पन्न करेगा और तुम्हारे मुह मे आ जायेगा।"

"और कौन कौन है, ये कालदूत ?"

"यह देखो हरी आखो वाली ईर्ष्या, यह लाल नेत्रो वाला आवेश, यह मोटे पेटवाला लोभ, यह निष्ठुरता, यह अशिष्टता, यह तृष्णा और यह आलस्य है। ये आठो जहा रहेंगे, वहा धीरे धीरे मनुष्य स्वय ही तुम्हारे मुह में आ जायेंगे।"

"अब मेरा कार्य हलका हो गया।" कहकर मृत्यु ससार में उतर आई।

—वैदिकधर्म अक्टू०-नव० १९७० से साभार

—o—

वैदिक संस्कृति और मोक्ष

ले० : श्री डॉ० मुंशीराम जी शर्मा,
डी० लिट्०, ६/७० आर्यनगर, कानपुर

जैसे शाला की नीव या आधार भूमि होती है और ईंट, पत्थर, सीमेंट, चूना, बालू आदि उसके निर्माण मे साधन-भूत होते है और लक्ष्य होता है उस मे सुखपूर्वक निवास करना, वैसे ही हमारे जीवन की आधार-शिला धर्म है, अर्थ और काम उसमे साधन रूप है और मोक्ष अर्थात् त्रिविध दु खो से छूट कर आनन्द प्राप्त करना उसका लक्ष्य है। वेद के अनेक मन्त्रो मे मोक्ष प्राप्ति की कामना वर्णित हुई है और स्वर्ग का अर्थात् सुख विशेष का काम्य तत्त्व के रूप मे उल्लेख हुआ है।

स्वर्ग को त्रिविष्टप तथा तृतीय धाम भी कहा गया है। इस तृतीय धाम मे जो मोक्ष रूप अमृत है उसका आस्वादन दिव्य-गुण-सम्पन्न दैवी पुरुष ही किया करते है। वेद कहता है —

यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त। – य० ३२/१०

इस तृतीय धाम मे देव अमृत का उपभोग करते हुए स्वच्छन्द विचरण किया करते है। व्याहृतियो मे स्वः का स्थान तीसरा है। उसके आगे के चार लोक या चार स्थितिया और है। ये स्थितिया मोक्ष के ही विभिन्न स्तर है, ऐसा छान्दोग्य उपनिषत्कार का अभिमत है। प्रथम प्रकार के स्वर्ग मे वसुओ का राज्य है, द्वितीय मे रुद्रो का, तृतीय मे आदित्य का, चतुर्थ मे मरुत का और पचम मे सोम का साम्राज्य है। इन मोक्ष लोको मे देव निवास करते है, जो न खाते है और न पीते है अपितु अमृत को देखते ही तृप्त हो जाते है। अतिम स्थिति मे साध्य देव पहुचते है जिनके लिए सूर्य के उदय तथा अस्त होने का कोई प्रश्न ही नही है, इनके लिये सदैव दिन ही रहता है। ये प्रकाश के वासी है, उपभोक्ता है और स्वय ज्योतिर्मय है। वेद कहता है —

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा
बृहद्देवासो अमृतत्वमानशु ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो
दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ।। ऋ० १०/६३/४

ये मुक्तात्मा देव नरत्व के द्रष्टा है, मानवता की पहचान रखते है, अपलक दृष्टि से सबको देखते है, पूजनीय है और बृहत् अमृतत्व का उपभोग करने वाले है। ज्योति इनका रथ है अर्थात् वाहन है। ज्योति के यान पर चढे हुये ये स्वच्छन्द गति से सभी दिशाओ मे विहार करते रहते है। इनकी प्रज्ञा कभी हीनता को प्राप्त नही होती है। ये अनागस् अर्थात् पाप से सदैव पृथक् रहते है। इनका शरीर प्रकाश का शरीर है। दधिरे दिविक्षयम्—ये द्यौ लोक के निवासी है। द्यौ लोक ही इनका निकेतन है।

मन्त्र मे मुक्तात्माओ की जो विशेषताये वर्णित है, उनमे प्रकाश की प्रमुखता है। विकास के स्तरो मे जब साधक प्रज्ञा लोक मे पहुंचता है तो स्वयं प्रकाश बन जाता है। सामान्य साधक इस स्थिति मे पहुच कर गिर जाते हैं, परन्तु जिसकी भूमि दृढ बन गयी, वह गिरता नही, वही स्थिर रहता है। इसीलिये मुक्तात्माओ को अ+हि+माया कहा गया है। माया का अर्थ प्रज्ञा है। नही होती हीन जिनकी प्रज्ञा अर्थात् जिनके अन्दर प्रज्ञा का प्रकाश सदैव बना रहता है, वे ही दिव्य आत्मा मोक्ष पद के अधिकारी बनते है।

प्रकाश में विचरण करना ही स्वाधीन बनना है। जो व्यक्ति प्रकाश विहीन है उसके दर्शन तथा आचरण अधूरे रहेगे। विश्व मे मैं अनेक पदार्थो को देखता हू परन्तु उनपर दृष्टिमात्र जाती है, ऊपरी परत कुछ-कुछ दिखाई पडता है, परन्तु वह दृश्य पदार्थ वस्तुत क्या है, उसकी अन्तरात्मा मे कौन-सा तत्त्व विद्यमान है, यह दृष्टिगोचर नही हो पाता। इसी प्रकार मैं जो कुछ करता हू सामान्यतया उसका भी मुझे सम्यक् बोध नही होता। जब तक मेरा दर्शन तथा कर्तृत्व विचारशून्य है और प्रकाश की परिधि से बाहर है तब तक उनका होना और न होना बराबर है।

प्रकाश मे सब वस्तुए अपने वास्तविक रूप में दिखाई देती हैं। प्रकाश मे मै जो कुछ करता हू उसका मुझे सम्यक् बोध होता है। अन्धकार मे स्थिति इसके विपरीत होती है। मानव अपने दैनन्दिन व्यवहार मे प्राय: अन्धकार मे ही भटकता रहता है। विरल हैं वे मानव जो प्रकाश मे विचरण करते हो।

प्रकाश की उपलब्धि साधना की उपेक्षा रखती है। दीक्षित होकर, व्रती बनकर, तप और श्रद्धा से सम्बन्धित होकर जो साधक प्रकाश की ओर बढते है, वे मोक्ष की ओर उन्मुख है और स्वाधीनता प्राप्त करने के अधिकारी है।

मोक्ष का अर्थ है 'छूटना'। किससे छूटना ? पाशो से, बन्धनो से, आवरणो से जो न जाने कब से आत्मा को आवृत्त किए हुए है। ये आवरण तीन प्रकार के है। साधक इन तीनो पाशो से मुक्त होने के लिए प्रभु से प्रार्थना करता है -

उदुत्तम वरुण पाशमस्मदवाधम विमध्यम श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ऋ० १/२४/१५

प्रभु आप वरुण है, वरणीय है, सर्वश्रेष्ठ है। आप ही पापो के वर्जक है, विघ्नो के निवारण करने वाले है। मेरे विघ्नो को भी दूर कर दो, मेरे वारको, आच्छादको का निवारण कर दो। मै विघ्नबाधा-विहीन परिस्थिति मे कल्याणपथ का पथिक बन सकू। नाथ! परिस्थिति-जन्य विघ्नो के साथ कुछ पाशो ने भी मुझे बाध रखा है। इन पाशो से भी मुझे छुडा दो। ये पाश उत्तम तथा अधम कोटि के है। इन्होने मुझे पापी बना दिया है। अधम पाश तमोगुण का है जो मेरे कर्तृत्व पथ मे बाधक बनता है। मध्यम पाश रजोगुण का है जो मुझे अनुचित रागद्वेष का आखेट बनाए हुए है। उत्तम पाश सत्तव-गुण का है जो मुझे अभिमान मे मग्न करता है। इन तीनो पाशो से आप ही मुझे छुडा सकते है। इन पाशो के कारण मे अदिति की अवस्था को अनुभव करने से वचित हो जाता हू। यह स्थिति मुझे व्रत से बाहर पराडमुख कर देती है। हे आदित्य। तुम्हारे व्रत से बाहर रहकर मै प्रकाश की भूमिका मे नही पहुंच पाता और इसी हेतु अखण्डता की अनुभूमि से पराङ्मुख रहता हू। कभी इस खण्ड मे, कभी उस खण्ड मे, कभी इस क्षेत्र मे, कभी उस क्षेत्र मे, कभी इस योनी मे, कभी उस योनि मे चक्कर काटते-काटते मै नितान्त परवश एव दीन बन गया हू। परतन्त्रता के थपेडे खाते-खाते ऐसी दुर्दशा मे पहुंच गया हू जो अब असहनीय, एकान्त असहनीय सिद्ध हो रही है। मुक्त करो, हे वरुण! मुक्त करो। प्रकाश दो, हे आदित्य! प्रकाश दो। माँ अदिति! मुझे अखण्डता की ओर ले चलो।

अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड मे दशम सूक्त का नाम पाश-मोचनम् है।

इसमे आठ मन्त्र है जिनमे प्रथम मन्त्र परवर्ती सात मन्त्रो में प्रथम पक्ति के आधिक्य के साथ रखा गया है। यह मन्त्र नीचे उद्धृत किया जाता है—

क्षत्रियात्त्वा निर्ऋत्या जामिशसाद
द्रुहो मुचामि वरुणस्य पाशात्।
अनागस ब्रह्मणा त्वा कृणोमि
शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्॥ अथर्व० २/१०/१

ऊपर हम प्रकाश की चर्चा कर चुके है। आध्यात्मिक विकास मे प्रज्ञा की उपलब्धि प्रकाश की उपलब्धि है। प्रज्ञा स्वरूपत विशुद्ध ज्ञानमयी है। ज्ञान प्रकाश ही है। सासारिक पदार्थो का ज्ञान विज्ञान नाम से प्रसिद्ध है। विज्ञान का अर्थ ही है विविध रूप सृष्टि का ज्ञान। इसके विपरीत ज्ञान आत्मज्ञान है। एक मे परिधि, ज्ञेय बनती है द्वितीय मे केन्द्र, अर्थात् आत्मा। सृष्टि का विज्ञान भी हमे आत्मज्ञान तक ले जाता है, वैसे ही जैसे परिधि का एक-२ बिन्दु केन्द्र की ओर प्रतिगति मे पहुच जाता है। ऊपर उद्धृत मत्र मे ब्रह्म अर्थात् ज्ञान द्वारा निष्पाप बन जाने की प्रतिज्ञा वर्णित हुई है।

भगवद्गीता के अनुसार—

ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा। – गी०४/३७
अथवा
सव ज्ञानप्लवेनैव वृजिन सन्तरिष्यसि। – ०४/३६

ज्ञानाग्नि समस्त कर्मो को भस्म कर देती है। ज्ञानरूपी नौका पर चढकर हम पाप रूपी सरिता को पार कर जाते है। कर्मचाहे सत् हो अथवा असत्, भोगभूमि को उत्पन्न करता है। असत् कर्म का पल दु ख भोग है। सत् कर्म सुख के उपभोग की ओर जाते है। आत्मा इन दोनो से निर्लिप्त है। वह चैतन्य-मयी तथा ज्ञानमयी है। ज्ञान का सम्पादन, ज्ञान रूपी सूर्य की एक-एक किरण, ज्ञान-अग्नि की एक-एक ज्वाला आत्म तत्व का व्याख्यान है। अतएव मन्त्र मे ज्ञान को अनागस् अथवा निष्पाप बनाने का जो साधन कहा गया है वह नितान्त उपयुक्त है। यदि मै ज्ञान द्वारा निष्पाप बन गया हू तो द्यावा और पृथिवी दोनो ही मेरे लिए कल्याणकारी सिद्ध होगे। मन्त्र मे वरुण के पाश से मुक्त होने का भी उल्लेख है। यह पाश क्षेत्रिय निर्ऋति, द्रोह तथा बन्ध बान्धवो के अनुचित पक्षपात से सम्बन्ध रखते है। निर्ऋति घोर कष्ट की अवस्था है।

इसका एक व्यापक रूप है और दूसरा क्षेत्रीय। मन्त्र में क्षत्रिय निऋति का वर्णन है जिसे व्यक्तिगत शारीरिक आपदा कहा जा सकता है। अपने बन्धु-बान्धवो का अनुचित शसन मानव मे पाप की वृत्ति उत्पन्न करता है। अत परित्याज्य है। यह द्रोह की ओर भी ले जाता है। यदि मै अपने बन्धुओ का अनुचित पक्षपात करता हू, तो स्वभावत अन्य व्यक्तियो के द्वेष का भाजन बनता हू। और जब अन्य व्यत्ति मुझ से द्वेष करने लगेगे तो प्रतिक्रिया रूप मे मैं भी उनसे द्वेष करने के लिए बाध्य हो जाऊ गा। यह स्थिति क्रिया और प्रतिक्रिया के रूप मे अत्यन्त भयावह रूप धारण कर सकती है। ज्ञान इस प्रकार के रोगो की एकमात्र औषध है। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्ति' की उक्ति प्रख्यात ही है। 'विद्ययामृतमश्नुते' विद्या या ज्ञान अमृत स्वरूप मोक्ष का प्रदाता है, ऐसा वेद स्वय कहता है।

निम्नाकित मन्त्र मे मुक्ति पाने तथा अमृत को उपलब्ध करने की प्रार्थना वर्णित है –

त्र्यम्बक यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ ऋ ०७/५९/१२

हे त्र्यम्बक! हे त्रिनेत्र! हे सर्वदर्शी! आप शोभन गन्ध वाले है। आपका यश सौरभ चतुर्दिक् विकीर्ण हो रहा है। सूर्य की रश्मिया, चान्द्रमसी धवल ज्योत्स्ना, उषा की अरुणिमा, तारकावलि की झिलमिलाहट, पुष्पो का विकास —सभी तो आपका गुणानुवाद कर रहे हैं। महिमामय महापुरुष, मनीषी विप्र, विपश्चित् कवि अपनी-अपनी सौम्य वाग्धाराओ मे, भाव भगिमाओ मे, विचार वैमल्य मे अनासक्त कर्मकाण्ड मे आपके ही विरुद का वर्णन किया करते है। आप की पोषण प्रदाता है, प्रदाता ही नही, उसका सवर्धन करने वाले है। जैसे कर्कटी (खरबूजा) का फल पकने पर स्वत वृन्त से पृथक् हो जाता है, वैसे ही हे देव! मुझे मृत्यु के बन्धन से छुडा दो और अमृतभागी बना दो।

वेद मे प्रभु को कई स्थानो पर अहोमुच कहा गया है। वास्तव मे पाप से छुडाने वाला एक मात्र प्रभु ही है। जो स्वय नित्य अमृत है वही दूसरो को भी अमर बना सकता है। जिसके पास आनन्द है वही दूसरो को आनन्द दे सकता है। जीवात्मा सत् चित् तो है ही, साथ ही वह आनन्द का भी अभिलाषी है। यह आनन्द उसे नित्यानन्दी परमात्मा से ही प्राप्त होता है। द्विजो के लिए सध्या को, उपासना को, जो दैनिकचर्या मे अनिवार्यता प्राप्त है, उसका भी

यही कारण है। हमारा ध्येय तीनो प्रकार के दु खो से छूट कर आनन्दमयी अमृत अवस्था को प्राप्त करना है। अथर्ववेद १६/४३ मे आठ मन्त्र है और सभी मन्त्र एक ही आकाक्षा प्रकट करते है। साधक चाहता है, उसे भी वह अवस्था प्राप्त हो जो ब्रह्मवेत्ताओ के लिए सुलभ है। दीक्षा और तप दो प्रमुख साधन हैं जो ब्रह्मवेत्ताओ को अमृत लोक मे ले जाते है। इनके द्वारा मल क्षीण होते है। मनन और चिन्तन, अध्यात्म क्षेत्र मे विचरण करने वाले साधक मे प्रज्ञा का उदय करते हैं। प्रज्ञा का यह प्रकाश आत्मा और अनात्मा की ग्रन्थि को सुलझाता है। प्रज्ञा मे प्रविष्ट हुआ साधक प्रभु के अनुग्रह से आत्मस्वरूप मे प्रतिष्ठित होता है और मोक्ष फल का भागी बनता है। निम्नाकित मन्त्र मे साधक की मोक्षकाक्षा स्पष्टत प्रकट हो रही है–

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ॥ अथर्व०१७/४३/८

तप और दीक्षा के साथ ब्रह्म-वेत्ता जिस लोक मे जाते है, ब्रह्मा मुझे वही पहुचा दे। ब्रह्मा मेरे अदर ब्रह्म को धारण करे। ब्रह्म ज्ञान है। ज्ञान अनन्त है। ब्रह्म का अर्थ ही महान् तथा अनन्त है। जब तक जीव तीनो देहों से बधा हुआ अपने को स्वल्प रूप मे अनुभव करता है, तब तक वह बधन-ग्रस्त है। इन बधनो से मुक्त होते ही उसे आत्मस्वरूप की विशालता भासित होने लगती है। यही ज्ञान है। अज्ञान उसे प्रकृति से हटा कर ब्रह्म की ओर ले जाता है। इस ब्रह्म को ज्ञान कहिये, आनन्द कहिये अथवा सबसे ऊपर परमपद का नाम दीजिए, बात एक ही है। जैन जिस अर्हत अवस्था मे पहुचते है, बौद्ध जिसे प्रज्ञापारमिता का नाम देते है, असद्वादी जिसे शून्य कहकर पुकारते है, वैदिक धर्मावलम्बी उसी को ब्रह्मलोक अथवा मोक्ष का नाम देते है। इस मोक्ष की आकाक्षा हम सबके अन्दर स्वभावत निहित है। नास्तिक से नास्तिक व्यक्ति भी दुःखो से छूटना चाहता है। मोक्ष का अर्थ ही छुटकारा है। तीनो प्रकार के दु खो (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) से छूट जाना हम सबके जीवन का एक मात्र ध्येय है। यजुर्वेद के चालीसवे अध्याय मे बन्धनो से छूट जाने के पश्चात् एक भावात्मक अवस्था का भी उल्लेख हुआ है। दु खो से छूट जाना एक बात है परन्तु आनन्द की उपलब्धि कर लेना उसके उपरान्त की अवस्था है। मन्त्र इस प्रकार है -

सम्भूति च विनाश च यस्तद् वेदोभय थ सह।

विनाशेन मृत्यु तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ।। य०४०/११

यह मन्त्र सम्भूति और असम्भूति की त्रिपुटी का तीसरा मन्त्र है। इसी प्रकार का एक मन्त्र यजुर्वेद के इसी अध्याय मे विद्या और अविद्या की त्रिपुटी के अन्त मे आता है :-

विद्या चाविद्या च यस्तद् वेदोभय थ सह ।
अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।। य०४०/१४

असम्भूति को विनाश की संज्ञा दी गयी है। यह विनाश प्रकृति से सम्बन्ध रखता है। हमे प्रकृति से पृथक होना है। पार्थक्य, त्याग अथवा विनाश द्वारा ही होता है। सम्भूति भावात्मक अवस्था है। उसका अर्थ ही है सम्यक् अस्तित्व अथवा शुद्ध सत्ता। आत्मा प्रकृति से छूटकर ही अपने स्वरूप मे अवस्थित होती है। अविद्या का अर्थ है विद्या से व्यतिरक्त कर्म और उपासना। प्राकृतिक दोष कई साधनो से क्षीण होते है। कर्म और उपासना उनमे प्रमुख हैं। मन्त्र मे इसीलिए कहा गया है कि विद्या अर्थात् कर्म और उपासना द्वारा साधक मृत्यु को पार कर जाता है। मृत्यु का चक्र विविध प्रकार की योनियो मे आना जाना है। मानव योनि अनेक योनियो के पश्चात् प्राप्त होती है, परन्तु इस योनि मे भी कई स्तर है जिनमे जन्म और मृत्यु का आवागमन तब तक होता रहता है जब तक मानव देवत्व को प्राप्त न कर ले। देवत्व प्रकाश का द्योतक है। यह प्रकाश जब स्थिर हो जाता है, तब उसे वेद के शब्दो मे अजस्र ज्योति, उच्चरन्त सूर्य अथवा उरु ज्योति कहा जाता है। मृत्यु को पार करके यह अजस्र ज्योति आत्मज्ञान द्वारा ही उपलब्ध होती है। जो आत्मज्ञान तक नही पहुंचा, आत्मस्वरूप मे स्थित नही हुआ, यह अमृतमयी अवस्था उसके भाग्य की वस्तु नही है। अथर्ववेद के १६वे काण्ड के ४३वे सूक्त मे अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, सोम, इन्द्र, आप तथा ब्रह्म नामो द्वारा एक विशेष क्रम का उद्घाटन किया गया है। इस क्रम को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता।

अग्नि का स्थान सर्वप्रथम है। यह अग्नि मेधा प्रदान करती है। अग्निया कई हैं, परन्तु चैतन्याग्नि इन अग्नियो मे महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यही मेधा की जननी है, इसी के द्वारा श्रवण और मनन अपना बनता है अर्थात् आत्मसात होता है, उस पर अपनी छाप लग जाती है। वह दूसरो का अथवा उधार लिया हुआ नहो जान पडता। आत्मिक विकास के लिए यह प्रथम सीढी है। अग्नि के उपरान्त वायु का स्तर आता है। वायु प्राण प्रदान करती है।

प्राण आत्मा की ही छाया है और मेधा से पूर्व स्थिति रखता है। मेधा प्राण के आश्रय से ही अभिव्यक्त होती है। प्राकृतिक सर्ग मे भी यही क्रम है। प्रकृति का प्रथम स्पन्द ही प्राण है। महत् तत्त्व जो मेधा और बुद्धि का व्यापक कोष है, प्राण शक्ति के उपरान्त ही आविर्भूत होता है। इसके पश्चात् सूर्य तत्त्व आता है जिससे चक्षु अर्थात् दर्शन शक्ति प्राप्त होती है। दर्शन द्रष्टा के साथ रहता है। इस दर्शन मे प्रकृति और आत्म तत्व पृथक-पृथक भासित होने लगते है। सूर्य के पश्चात् चन्द्र आता है। चन्द्र मन प्रदान करता है। यह मन चन्द्र का, आह्लाद का जनक है, ऐसा पुरुष सूक्त मे कहा गया है। इसके पश्चात् सोम का स्थान है जो पय अर्थात् रस का प्रदाता है। 'रसो वै स' कह कर तैत्तिरीय उपनिषद् ने जिस रस का नाम लिया है उसी की संज्ञा पय है। अथर्ववेद भी १८/१/४८ मे प्रभु को मधुमान् तथा रसवान् कहता है। इस रस से भी ऊपर इन्द्र है जो इन्द्रियो का, देवो का अधिपति है। देव इस रस का आस्वादन करते हैं, परन्तु तभी जब इन्द्र का बल उनके साथ हो। आत्मबल की अनुपस्थिति मे रस का आस्वादन नही किया जा सकता। वेद ने 'अपाम सोमम् अमृता अभूम' कह कर जिस सोम पान का वर्णन किया है वह यही रस है। आत्मबल के ऊपर आप: शक्ति है। यह व्यापक भूमा अवस्था की द्योतिका है। जिसे हम मोक्ष कहते है उसकी व्यापकता की अनुभूति इसी आप अवस्था मे होती है। अन्तिम स्तर पर ब्रह्म आता है। ब्रह्मलीनता विरल साधको की प्राप्तव्य भूमि है। इस क्रम पर यदि पाठक गम्भीरता से विचार करेंगे तो उन्हे विविध साधन-भूमियों के सामजस्य का किंचित आभास प्राप्त हो सकेगा। मोक्ष हमारे चतुर्वर्ग मे अन्तिम तत्त्व है और मानव जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य है। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमारे निखिल साधन-समुदाय है।

—वेदवाणी १६/१ : नव० १९६६ से साभार

— 0 —

आर्यसमाज : एक शताब्दी की उपलब्धियां

ले०—डा० भवानीलाल भारतीय
एम० ए०, पी-एच० डी०

भारत में आर्यसमाज संस्थापना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—

शताब्दियो की राजनीतिक पराधीनता ने भारतीय समाज को विकार ग्रस्त बना दिया था। राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक उत्पीड़न तथा ग्रात्मबोध के ग्रभाव ने भारतवासियो मे जिस हीन भावना को जागृत किया उसका सहज ही उन्मूलन होना कठिन था। ग्रठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक पहुंचते-पहुंचते स्थिति ग्रौर भी भयावह बन गई। मुगल साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने के पश्चात् उत्पन्न राजनीतिक ग्रस्थिरता ने देश के नैतिक ग्रौर सास्कृतिक मूल्यो को विघटित कर दिया। ग्रराजकता, ग्रसुरक्षा तथा ग्रस्थायित्व के भाव भारतीय जन समाज मे पनपने लगे ग्रौर ऐसा प्रतीत होता था कि यदि शीघ्र ही शासन की स्थिरता, सामाजिक सुरक्षा तथा वैयक्तिक ग्रौर समष्टिगत ग्रधिकारों की रक्षा का ग्राश्वासन नही मिला तो देश का भविष्य ग्रधकारपूर्ण हो जायेगा।

विदेशी शासन से उत्पन्न पराधीनता के भावो ने हिन्दू समाज को विकार ग्रस्त ही नही बनाया, हिन्दुग्रो के धार्मिक, नैतिक तथा ग्राध्यात्मिक मानदण्डो की भी ग्रपूरणीय क्षति की। सहस्राब्दियो पूर्व के वैदिक, ग्रौपनिषदिक तथा रामायण महाभारत कालीन समाज मे लोगो की इहलोक ग्रौर परलोक के प्रति जो स्वस्थ दृष्टि थी वह तो ग्रतीत की वस्तु हो ही गई, मौर्य ग्रौर गुप्त युगीन भौतिक समृद्धि तथा वैभव, कलात्मक ग्रभिरुचि, साहित्य, सगीत, काव्य ग्रौर स्थापत्य के क्षेत्र मे महती उपलब्धिया ग्रौर बृहत्तर भारत के समुद्र पारीय देशो पर भारत की सास्कृतिक विजय के तथ्य भी ग्रब केवल इतिहास में लिखने योग्य ही रह गये। धर्म, समाज, ग्रौर सामान्य जनजीवन के क्षेत्र में

पराधीनता की काली घटाओ ने आपत्ति विपत्ति और अभिशापो की उपल वृष्टि की उससे जनता के दुख और कष्ट ही बढे। धर्म के नाम पर थोथा कर्मकाण्ड, नैतिकता के नाम पर मिथ्या और मूढ विश्वासो का प्रचलन तथा सुसगत सामाजिक विधान के स्थान पर कठोर वर्जनाये और नियत्रण इन युग की कतिपय विकृतिया थी। लोगो का चिन्तन इतना विकारग्रस्त एवं दूषित हो गया था कि वैचारिक उर्वरता के स्थान पर कट्टर सकीर्णता तथा अनुदारता के भावों का ही प्रसार हुआ। फलत समाज मे बाल विवाह का प्रचलन, विधवाओ पर अत्याचार, बहु विवाह की स्वीकृति, स्त्रियो की शिक्षा पर प्रतिबन्ध तथा उन्हे पर्दे के पीछे रखे जाने की प्रथा, जन्म के आधार पर स्पृश्या-स्पृश्य की भावना तथा कन्या वध, सती दाह आदि नारी वर्ग के प्रति असीम अत्याचारो का विधान स्वीकृत हुआ। इन सामाजिक कुरीतियो ने हिन्दू समाज की एकता को विशृ खलित कर दिया जिसका एक अवश्यम्भावी परिणाम हुआ सहस्रो जातियो और उपजातियो की सकीर्ण काराओ मे बधकर समाज का छिन्न-भिन्न और अस्त-व्यस्त हो जाना।

इसी समय भारतवासियो का पश्चिम से सम्पर्क हुआ। यूरोपीय राष्ट्रो ने धीरे-धीरे भारत मे अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया। पुर्तगाली, फ्रान्सीसी और अग्रेजी उपनिवेशो की स्थापना इस देश मे हुई। राष्ट्रो की इस होड़ में अग्रेज जाति ही सर्वाधिक शक्तिशाली प्रमाणित हुई और अग्रेजो को ही भारत में साम्राज्य स्थापित करने का अवसर मिला। अग्रेजी शिक्षा, शासन तथा सभ्यता से प्रभावित होने वाला भारत का सर्वप्रथम प्रान्त बगाल था। अठारहवीं शताब्दी का वह धूमिल सध्याकाल था। नवयुग के आगमन की ज्योति बेला सन्निकट थी।

विदेशी सस्कृति से भारत का सम्पर्क और उसका दूषित प्रभाव—

अग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के साथ-साथ पाश्चात्य सभ्यता को भी आधी आई और उसने भारतीय जनमानस को बुरी तरह झकझोर दिया। भारतवासी राजनैतिक दृष्टि से तो दास बने ही उनकी नैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा भी शोचनीय हो गई। देश एक अभूतपूर्व सास्कृतिक सकट से गुजर रहा था। पश्चिम के इस सम्पर्क का भारतवासियो पर द्विविध प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव को श्रेयस्कर और स्पृहणीय इस अर्थ मे कहा जा सकता है

कि इससे भारतवासियो में स्वतत्रता, समानता, बधुत्व के भावो का उदय हुआ। इस समय तक यूरोप मे राष्ट्रवाद का जन्म हो चुका था। धार्मिक सकीर्णता के भाव समाप्त हो रहे थे। फ्रास की राज्य क्रान्ति तथा अमेरिका के स्वातत्र्य युद्ध ने लोगों में प्रजातत्र के भाव उत्पन्न किये और व्यक्तिगत स्वाधीनता का उद्घोष हुआ। उधर इंग्लैण्ड तथा यूरोप के अन्य देशों में औद्योगिक क्रान्ति हुई जिसने समाज के ढाचे मे प्रभावी परिवर्तन किये। लोगो के सोचने की दृष्टि बदली तथा युग के दार्शनिक विचारक और चिन्तक यह अनुभव करने लगे कि मध्यकालीन सकीर्णता और कट्टरता का युग समाप्त हो गया है तथा विज्ञान एव बुद्धिवाद पर आश्रित नवीन युग बोध का उदय हो रहा है।

यूरोपीय राष्ट्रो के सम्पर्क, विज्ञान के रेल, तार, डाक आदि नूतन आविष्कारो के प्रसार तथा पश्चिमी शिक्षा ने हमारे अधविश्वासो और रुढिगत कदाचारों पर निर्मम प्रहार किया और हमे उदार तथा व्यापक दृष्टि अपनाने के लिये विवश किया। भारतवासियो मे राष्ट्रीय भावो का उदय हुआ, उन्होने समष्टिगत दृष्टि से सोचने का प्रयत्न किया फलत वैयक्तिक वैचारिक स्वतत्रता के लिये सघर्ष करने की प्रेरणा भी उन्हे मिली। इन सब का यह परिणाम निकला कि शताब्दियो से प्रचलित गतानुगतिकता, रूढिवाद एव कुरीतियो के बधनो से मुक्त होने के लिये उनका मन व्याकुल हो उठा।

यह सब कुछ होने पर भी यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि इस विदेशी सम्पर्क का हम पर सर्वथा अनुकूल प्रभाव ही नही पडा, हममे अन्धानु-करण, परमुखापेक्षिता तथा स्वाभिमान शून्यता के भाव बढने लगे। यद्यपि समाज में एक ऐसा वर्ग भी था जो अधविश्वास, परम्परा पालन तथा वैचारिक जडता से चिपके रहने मे ही अपना हित समझता था जबकि पश्चिमी सम्पर्क से प्रभावित नवयुवक वर्ग ने प्रत्येक स्वदेशी वस्तु को हेय मानकर प्रत्येक बात मे अपनी अनुकरण वृत्ति को मुख्यता देते हुए विदेशी वर्ग की ओर सतृष्ण नेत्रो से देखने मे ही अपनी सार्थकता मान रखी थी।

पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव

पश्चिमी शिक्षा तथा ईसाई धर्म प्रचारको के कार्य ने हमारे राष्ट्रीय

स्वाभिमान को और भी कुचल डाला। विजयी राष्ट्रो की यह सदा की प्रवृत्ति रही है। कि पराजित राष्ट्र को न केवल राजनीतिक दृष्टि से ही पगु बनाया जाये, अपितु भाषा, भाव और आचार विचार का दासत्व भी उन पर थोप दिया गया। इसके लिये सर्वप्रथम वे पराजित राष्ट्र पर अपनी शिक्षा प्रणाली थोपते हैं। इसका सुनियोजित परिणाम थोड़े समय के भीतर ही प्रकट होने लगता है। अंग्रेजों ने भी भारत मे यही किया। उन्होने भारत को राजनीतिक दृष्टि से तो दास बनाया ही उनकी यह भी चेष्टा रही कि शिक्षा, सभ्यता, धर्म, और विचारो की दृष्टि से भी भारतवासी अपने शासकों का मुह जौहने वाले बन जायें। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये उन्होने अंग्रेजी ढग के स्कूल और कालेज स्थापित किये तथा उनमे पश्चिमी शिक्षा प्रणाली का प्रारम्भ कर भारत-वासियो को हीन सत्व, स्वाभिमान शून्य तथा पाश्चात्य जीवन प्रणाली का अनुगामी बताया। लार्ड मैकाले द्वारा निर्धारित इस शिक्षा योजना ने भारतीयों के स्वात्मबोध को सर्वथा नष्ट कर दिया। जिस शिक्षा का उद्देश्य ही एक ऐसा वर्ग उत्पन्न करना था जो आचार विचार बुद्धि और मन से अंग्रेज होने का दम भरे उससे अधिक आशा रखना ही व्यर्थ था। मैकाले के उस प्रसिद्ध पत्र की वह उद्धृत पक्तियो का उपर्युक्त भाव यह स्पष्ट सूचित करता है कि इस शिक्षा नीति के क्रियान्वयन मे उसका मूल उद्देश्य क्या है ?

लार्ड मैकाले को अपनी शिक्षा विषयक नीति की सफलता मे पूर्ण विश्वास था। तभी तो अपने पिता को १८३६ ई० मे लिये गये एक पत्र मे उसने यह विश्वास व्यक्त किया कि जो भी हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण कर लेता है वह अपने धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा और विश्वास खो बैठता है। कुछ केवल दिखावे के रूप में उसे मानते हैं, कतिपय अन्य ईसाई हो जाते हैं। वह मेरा सुनिश्चित विश्वास है कि यदि शिक्षा की हमारी यह योजना पूरी तरह काम से लाई गई तो अब से तीस वर्ष पश्चात् बगाल के कुलीन वर्ग मे कोई मूर्तिपूजक (हिन्दू) नहीं रहेगा।

इस प्रकार सरकारी शिक्षण सस्थाओं में जहा अंग्रेजी शिक्षा के कीटाणु भारतवासियो के जात्याभिमान और अस्मिता को नष्ट कर रहे थे वहा विदेशी शासको की सहानुभूति और सरक्षण पाकर ईसाई धर्म प्रचारक भी धर्म प्रचार की ओट में उन्हें अधिकाधिक पश्चिमाभिमुख बनाने का प्रयास कर रहे थे। इन कथाकथित धर्म प्रचारको ने जनमानस को हीनभाव से ग्रस्त तथा दुर्बल ही बनाया।

पुनर्जागरण के आन्दोलनों का प्रादुर्भाव

ऐसी ही परिस्थिति मे देश मे धार्मिक और सास्कृतिक पुनर्जागरण के आन्दोलनो का उदय होना स्वाभाविक ही था। नवोदय के आन्दोलनों का उद्देश्य था भारतीय समाज मे व्यापत रूढिवादिता की व्याधि को समाप्त कर भारत की युवक शक्ति को पाश्चात्य सभ्यता के विनाशकारी प्रभाव से बचाते हुए देश की अस्मिता को सुरक्षित रखना। इन आन्दोलनो के द्वारा समाज मे प्रचलित बाल, अनमेल, और वृद्ध विवाह, विधवा विवाह निषेध, पर्दा प्रथा, समुद्र यात्रा अस्वीकार आदि सामाजिक रूढियो और कदाचारो को उन्मूलित करने की चेष्टा की गई। समाज के क्षेत्र मे ही नही, धर्म के क्षेत्र मे भी मूल्यो का पुनर्विवेचन किया गया। उसे युग के अनुसार ढालने का प्रयास तो हुआ ही, साथ ही इस बात पर विचार किया कि क्या बाह्याचारो, रूढियो और स्थूल कर्मकाण्डो को ही सज्ञा दी जा सकती है अथवा धर्म के उदात्त एव महनीय तत्त्व और ही है जो सत्य, अहिसा, क्षमा, करुणा, सर्वभूत हित जैसे दिव्य गुणो मे विद्यमान रहते है।

भारतीय समाज को रूढि मुक्त बनाने का एक उपाय यह भी था कि देशवासियो का ध्यान भारत के उस सुदूर अतीत की ओर खीचा जाये जो अत्यन्त प्रोज्ज्वल, सत्व प्रधान तथा वर्चस्व पूर्ण था। नवोदय वादियो ने यही किया। लगभग सभी नवोत्थानवादी नेताओ ने अतीत की स्वर्णिम पृष्ठभूमि पर ही नव निर्माण की बात कही। भारतीय नव जागरण के पितामह राजा राममोहन राय ने उपनिषदो मे व्याख्यात अध्यात्म तत्व को अपने मनन और चिन्तन का आधार बनाया। पुनर्जागरण के सर्वाधिक शक्तिशाली ज्योतिर्धर महर्षि दयानन्द ने भी वेदो की ओर लौटने की बात कही। वेदो की सुदृढ आधार भूमि पर ही उन्होने हिन्दू समाज को सगठित करने का प्रयास किया। उन्होने आर्यसमाज की स्थापना कर भारतीय पुनर्जागरण को एक निश्चित दिशा प्रदान की।

आर्यसमाज के सिद्धान्त, कार्य और उपलब्धियां

विक्रम की बीसवी शताब्दी में विज्ञान और बुद्धिवाद के आधार पर पुरातन आर्य धर्म और भारतीय सस्कृति की मान्यताओ का पुनर्मूल्याकन करने के लिये जिन सुधार आन्दोलनो का भारत मे जन्म हुआ, उनमे आर्यसमाज

अन्यतम था। महर्षि दयानन्द ने अपने भक्तो और मित्रो के आग्रह पर चैत्र शुक्ला प्रतिपदा स० १९३२ वि० के दिन गिरगाव बम्बई मे पारसी डा० माणेक जी के उद्यान मे आर्यसमाज की स्थापना की। समाज के सिद्धान्तो और विधान को २८ नियमों में निबद्ध किया गया। प्रारम्भ मे ही महादेव गोविन्द रानाडे, गोपालराव हरिदेशमुख, सेवकलाल कृष्णदास, गिरधरलाल दयालदास कोठारी आदि कई प्रतिष्ठित पुरुष आर्यसमाज के सभासद बने। यहा रा० ब० मूलराज तथा लाला साईदास जैसे कर्मठ सहयोगी आर्यसमाज के सस्थापक को मिले। यही पर ही आर्यसमाज के नियमो और उद्देश्यो को उसके विधान से पृथक् किया गया और सगठन सम्बन्धी सवैधानिक धाराओ को उपनियमो के रूप मे पृथक् किया गया। स्वामी दयानन्द के जीवनकाल मे ही आर्यसमाज का सार्वत्रिक प्रचार हुआ, देश के सभी भागो मे उसकी शतशः शाखाये स्थापित हुई और सहस्रों व्यक्ति आर्यसमाज के सभासद बने।

पुनरुत्थानवादी दृष्टि लेकर चलने वाला आर्यसमाज अपने समसामयिक (पूर्ववर्ती ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज तथा परवर्ती थियोसोफिकल सोसाइटी तथा रामकृष्ण मिशन) आन्दोलनो की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील एव यथार्थ-वादी सिद्ध हुआ। आर्यसमाज ने वेदो के आधार पर धर्म के सिद्धान्तों की नवीन व्याख्या की और बताया कि धर्म का अभिप्राय केवल रूढिगत विचारों का अनुसरण करते हुए क्रियाकाण्डो के पालन मे ही नही है, अपितु धर्म उन उदात्त गुणो की समष्टि का नाम है जो मनुष्य के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान मे सहायक होते हैं। आर्यसमाज की यह भी मान्यता रही है कि भारत के मूल निवासी आर्यों ने अपने ग्रन्थो में धर्म और नैतिकता के जिन सिद्धान्तो को सूत्रित किया था वे सर्वकाल और सर्वदेशो मे उपयोगी है। अतः आर्यसमाज वेदो और उपनिषदो तथा अन्य ऋषि प्रोक्त ग्रन्थो मे प्रतिपादित उस नैतिक एव आध्यात्मिक शिक्षा का धर्म के नाम पर प्रचार करना चाहता है जिसमे विश्व बन्धुत्व तथा मानव प्रेम के सूत्र गुम्फित है।

आर्यसमाज ने अपने सिद्धान्तो को देश और काल सापेक्ष नही बनाया। उसके छठे नियम के अनुसार ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य बताया गया है और मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एव आत्मिक उन्नति को सर्वोपरि लक्ष्य ठहराया गया है। मानव ही नही अपितु प्राणिमात्र के हित को अपना ध्येय मानते हुए भी आर्यसमाज की शिक्षाओ का राष्ट्रहित से कोई विरोध नही है। अपितु पुनर्जागरण के अध्येता विद्वानों का

यही निश्चित मत है कि आर्यसमाज के द्वारा देश का जो व्यापक हित साधन हुआ है उसे ही उसकी लोक प्रियता तथा सफलता का मूल कारण समझना चाहिये। ब्रह्मसमाज आदि संस्थायें जहां एक स्पष्ट राष्ट्रीय नीति के अभाव में काल कवलित हो गई वहा आर्यसमाज ने धर्माचरण तथा राष्ट्र सेवा को सदा अभिन्न समझा। देश के राष्ट्रीय जागरण और स्वाधीनता प्राप्ति के पुनीत कार्य में आर्यसमाज के अनुयायियो का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

आर्यसमाज और समाज सुधार—

इतिहास के अध्येताओ ने आर्यसमाज का उल्लेख समाज सुधार क्षेत्र मे कार्य करने वाली प्रमुख सस्था के रूप मे किया है। आर्यसमाज के सुधार आन्दोलन ने उत्तर भारत के जन-जीवन को किस प्रकार और कहा तक प्रभावित किया है, इसका यथार्थ मूल्याकन अभी होना शेष है। विवाह प्रथा मे समुचित सुधार, वर्णाश्रम व्यवस्था की वैज्ञानिक व्याख्या, अस्पृश्यता निवारण, नारी शिक्षा कुछ ऐसे क्षेत्र है, जिनमे आर्यसमाज का कर्तृत्व अपने वस्तुनिष्ठ रूप मे अभिव्यक्त हुआ है। विशेषत: हिन्दू समाज मे व्याप्त अस्पृश्यता के अभिशाप को दूर करने तथा दलित एवं पिछडी जातियो को उच्च वर्ग के लोगो के समान स्तर पर लाने के लिये आर्यसमाज के प्रयास सर्वथा श्लाघनीय रहे है। स्वय महात्मा गाधी ने ऋषि दयानन्द की अर्द्ध निर्वाण शताब्दी के अवसर पर यरवदा कारागार से प्रेषित अपने सन्देश मे कहा था—"ऋषि दयानन्द ने हमारे लिये जो मूल्यवान विरासते छोडी हैं उनमें अस्पृश्यता के विरुद्ध उनका उद्घोष सर्वप्रमुख है।"

यद्यपि यह कहना कठिन है कि समाज सुधार का कार्य पूर्णतया समाप्त हो गया, तथापि यह निश्चित है कि जन सामान्य मे समाज सुधार के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करना तथा लोगो के दृष्टिकोण मे उदारता एव प्रगति शीलता सचरित करना आर्यसमाज की एक उल्लेखनीय उपलब्धि रही। आज भी सामाजिक वैषम्य समाप्त नही हुआ है, जातपात के दलदल से निकल कर हिन्दू समाज अपने आपको सुसगठित इकाई के रूप में प्रस्तुत नही कर सका है फिर भी आर्यसमाज ने जो कुछ किया, उसका महत्व सुस्थिर है। महर्षि दयानन्द ने जिस अज्ञान, अन्याय और अभावों से रहित, अंधविश्वास एव मूढ आचार विचारो से सर्वथा मुक्त समाज की कल्पना की थी उसे चरितार्थ करने के लिए आर्यसमाज को एक बार पुन: तत्परता के साथ सुधार और संस्कार का

कार्य अपने हाथ मे लेना होगा। आज परिस्थितिया परिवर्तित हो चुकी हैं। आज के पचास वर्ष पूर्व अछूतोद्धार तथा नारी शिक्षा के लिये जहा आर्य-समाज को शास्त्रार्थ, उपदेश और बहस मुबाहिसे करने पडते थे वहां आज या कार्य जन शिक्षण तथा शासन के नियमो के आधीन हो रहा है परन्तु यह भी स्वीकार करना पडता है कि नये-नये मत पथ, आडम्बर तथा अंधविश्वासों का क्षितिज पूर्वापेक्षा अधिक व्यापक ही हुआ है। महर्षि दयानन्द का स्वप्न तभी पूर्ण होगा जब आर्यसमाज वर्तमान युग में व्याप्त नाना साम्प्रदायिक बाह्याडम्बरो एव मूढ विश्वासो को समाप्त कर सकने मे समर्थ हो सकेगा।

आर्यसमाज और राष्ट्रीयता—

आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने अन्य धर्माचार्यों से सर्वथा भिन्न अपने राजनैतिक एव राष्ट्रीय विचारो को स्पष्ट रीति से अभिव्यक्त किया। वे मूलत: राष्ट्रवादी थे। उनकी राष्ट्रीय सवेदना की प्रशंसा करते हुए योगी अरविंद ने एक स्थान पर लिखा है—

दयानन्द मे राष्ट्रीय चेतना थी और वे उसे उद्दीप्त कर सके थे। सुप्रसिद्ध फ्रैन्च विद्वान् रोम्यां रोलां का भी यह दृढ विश्वास था कि दयानन्द भारत के पुनर्जागरण का अग्रदूत था और उसने भारत की राष्ट्रीय चेतना को जगाने का अदभुत कार्य किया। होम रूल लीग की अध्यक्षा श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने तो यहा तक लिख दिया था कि ऋषि दयानन्द ने प्रथमत: भारत भारतवासियो के लिये है की घोषणा की।

अपने सस्थापक के स्वातन्त्र्य प्रेम तथा देशभक्ति के भावों से प्रेरणा लेकर आर्यसमाज ने अपने शैशव काल से ही भारत के स्वाधीनता सग्राम मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। यद्यपि आर्यसमाज एक विशुद्ध धार्मिक आदोलन होने तथा अपनी सार्वभौम और सार्वकालिक सरचना को सुरक्षित रखने के कारण वह किसी देश विशेष की सामयिक राजनीति में प्रत्यक्षत भाग नही लेता तथापि उसके अनुयायियों ने भारत के स्वाधीनता आन्दोलन मे सर्वात्मना भाग लेकर अपने आचार्य की भावनाओ का ही आदर किया है। श्याम जी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपतराय, सूफी अम्बाप्रसाद, गेदालाल दीक्षित, भगत सिह, राम प्रसाद बिस्मिल आदि क्रान्तिकारी देशभक्त आर्यसमाज से ही प्रेरणा लेकर देश के लिये आत्म त्याग और बलिदान करने मे समर्थ हुए थे। आज भी आर्यसमाज के साधारण सदस्य देशभक्ति और राष्ट्र सेवा में किसी से पीछे नही हैं। आर्यसमाज शताब्दी समारोह अमृतसर में भाषण देते हुए पजाब

के मुख्यमन्त्री ज्ञानी जैल सिंह ने ठीक ही कहा था कि देशभक्त आर्यसमाज ने उत्पन्न किए हैं उतने किसी अन्य संस्था ने नही।

आर्य समाज और शिक्षा—

शिक्षा के क्षेत्र में भी आर्यसमाज का योगदान कम नहीं है। आर्यसमाज के सस्थापक ने अपने ग्रन्थों मे शिक्षा विषयक जिस निति का प्रवर्तन किया था उसे पुष्पित और पल्लवित करने का प्रयत्न कालान्तर में हुआ। डी. ए वी कालेज आन्दोलन का सर्वत्र प्रसार इस बात का द्योतक है कि आर्यसमाज ने शिक्षा विषयक पौरस्त्य और पाश्चात्य, शास्त्रीय और वैज्ञानिक दोनो दृष्टिकोणों के समन्वय का प्रयास किया है। महान् शिक्षाशास्त्री स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा गुरुकुल की स्थापना इस तथ्य का सूचक है कि दयानन्द निर्दिष्ट शिक्षा पद्धति केवल कल्पना अथवा अव्यावहारिक न होकर सर्वथा वास्तविक एव व्यवहारोपयोगी है। वस्तुत. रवीन्द्रनाथ ठाकुर की विश्वभारती, वाराणसी की काशी विद्यापीठ तथा असहयोग आन्दोलन के युग मे स्थापित शिक्षण सस्थाये मूलत गुरुकुलो के आदर्श पर ही स्थापित की गई थी।

आज भी आर्यसमाज प्रतिवर्ष करोडो रुपया स्व सचालित शिक्षण सस्थाओ पर व्यय करता है। उसकी पर्याप्त शक्ति और श्रम गुरुकुलो तथा कालेजो के सचालन मे लगता है, परन्तु इन शिक्षण सस्थाओ का आनुपातिक लाभ आर्यसमाज को नही मिल पाता। अतः आवश्यकता इस बात की है कि एक समन्वित शिक्षा पद्धति के रूप मे आर्यसमाज अपनी शिक्षा नीति का पुनर्निधारण करे। इनमे प्राचीन आश्रम प्रणाली अनुरूप छात्रो के वैयक्तिक, चारित्रिक गुणो का समुचित विकास जिस प्रकार अभीष्ट है, उसी प्रकार नवीन ज्ञान, विज्ञान और तकनीकी शिक्षा के महत्त्व को भी स्वीकार किया जाना आवश्यक है। आर्य समाज की शिक्षण संस्थाओ मे विद्यार्थी की मातृभाषा तथा राष्ट्र भाषा हिन्दी को शिक्षा के माध्यम के रूप में सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी। अत यदि आर्यसमाज अपने सस्थापक के शिक्षा विषय आदर्शों को वास्तविक रूप मे क्रियावित करना चाहे तो यह अत्यन्त उपयुक्त होगा कि वह आर्ष ज्ञान के भाण्डागार सस्कृत वाङ्मय के अध्ययन और अध्यापन के साथ-साथ भौतिक विज्ञान (स्वामी दयानन्द के शब्दों मे पदार्थ विद्या) की सभी शाखाओ के अध्ययन अध्यापन की एक समन्वित प्रणाली पर बल दे।

स्मारिका दिस० १९७५ से साभार।

—०—

वैदिक शिक्षा राष्ट्रीय कार्यशाला की प्रमुख संस्तुतियां :-

१. समग्र शिक्षा के उद्देश्य की सफलता "मातृमान पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद" के सदेश को ग्रामुख रखते हुए माता, पिता एव आचार्य के सम्मिलित प्रयत्न से ही सभव है । अत. प्रत्येक गृहस्थ बालक के प्राथमिक निर्माण शाला हैं । इस हेतु 'माता निर्माता भवति' के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए नारी शिक्षा पर सर्वप्रथम बल दिया जाना चाहिये ।

२. आचार्य शिष्य का सबध गर्भस्थ शिशु की तरह अतरग होना चाहिये । प्रत्येक अध्यापक छात्रो के एक छोटे समुदाय के सर्वतोमुखी विकास के लिये उत्तरदायी होना चाहिये । छात्र-अध्यापक सबध कक्षा तक सीमित न हो कर जीवत पर्यन्त अतरतम स्तर तक होने चाहिये ।

३ बच्चो मे अनुकरण की सहज जात प्रवृति होती है । अत. माता, पिता और आचार्य को अपने स्वय के आचार, विचार और व्यवहार पर पूरी निगरानी रखनी चाहिये ।

४. प्रत्येक अध्यापक और छात्र को दैनिक कार्यों का लेखा जोखा डायरी मे लिखना चाहिये तथा इस प्रक्रिया को शिक्षा का अनिवार्य अग स्वीकृत किया जाये । जिससे कि इनमे आत्मदर्शन एव आत्म निरीक्षण की प्रवृति उजागर हो सके ।

५. कोई भी नागरिक आठ वर्ष के पश्चात् यदि अपने बच्चो को पाठशाला न भेजे तो उसे कानूनी दृष्टी से दडनीय घोषित किया जायेगा यद्यपि राष्ट्रीय एव प्रादेशिक सरकारो की यह नीति है कि प्रत्येक ५ वर्ष का बालक पाठशाला मे जाये लेकिन बहुधा यह देखा गया है कि निर्धन वर्ग के बच्चे बीच मे ही पाठशाला छोड़ देते है । शिक्षा मे फैले इस भयकर अपव्यय एव अवरोधन के निदान हेतु यह कार्यशाला निम्न सस्तुतिया

करती है–

क- आधुनिक पाठविधि में अर्थकरी एवं लाभकारी शिक्षा का समावेश किया जाये।

ख- शिक्षा संस्थानो को रूचि वैवध्यपूर्ण एव आकर्षक बनाया जाये।

ग- खेल-२ मे शिक्षा देने की प्रणाली का विकास किया जाये।

घ- पौष्टिक आहार की नि:शुल्क व्यवस्था की जाये। समय-२ पर पाठ–शालाओ बच्चो का नि·शुल्क स्वास्थ्य परीक्षण कराया जाये।

च- अभिभावको को रात्रि पाठशालाओ द्वारा शिक्षित कराया जाये।

छ- निर्धन छात्रो को नि.शुल्क शिक्षा एव आर्थिक प्रोत्साहन दिया जाये।

ज- माध्यमिक स्तर तक को शिक्षा मे छात्र के त्रस्वालबन की ऐसी क्षमता का निर्माण अवश्य हो जाना चाहिये जिससे वह कुटीर उद्योगो एव हस्तकलाओ के आधार पर स्वतत्र रूप से उपाजन के योग्य बन सके।

६. अनिवार्य शिक्षा योजना के महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय लक्ष्य को पूरा करने हेतु राष्ट्रीय जीवन मे निहित शिक्षित बेरोजगार नवयुवको की विशाल जन-शक्ति को इस महती कार्य मे लगा दिया जाना चाहिये इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय की स्नातक उपाधि प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक शर्त होनी चाहिये जिसमे छात्र द्वारा देहात मे कम से कम एक वर्ष शिक्षा के प्रसार कार्य मे लगाया गया हो।

७ प्रजातात्रिक मूल्यो के विकास हेतु अर्थात् प्रजातत्र को ठोस रूप मे स्थापित करने हेतु यह आवश्यक है कि राजा और रक तक शिक्षा दीक्षा एक जैसी हो। उच्च श्रेणी एव निम्न श्रेणी के स्कूलो का वर्गीकरण समाप्त होना चाहिये। पब्लिक स्कूलों तथा सरकारी म्युनिसिपल एव पंचायत स्कूलो मे बिषमता समाप्त होनी चाहिये। इस कार्य को मूर्त रूप देने हेतु व्यापक रूप से मौहल्ला पाठशालाओ के सिद्धांत को सक्रिय रूप से अपनाया जाये। ग्राम, मौहल्ला पाठशालाओ के सम्बन्ध मे विशेष

सस्तुतियां–

७-१ साधनो को जुटाने की दृष्टि से सम्भ्रात वर्ग में बच्चों से फीस ली जाये तथा निर्धन वर्ग के बच्चो को शुल्क मुक्ति दी जाये।

७-२ शिक्षा का स्तर एक जैसा हो। वेशभूषा की समानता हो।

७-३ प्रत्येक मौहल्ला/ग्राम स्कूल की यह जिम्मेदारी होनी चाहिये कि वह ग्रास पास के वातावरण को स्वच्छ रखे। पेड पौधों को लगायें। मुहल्ले को साफ रखने का ग्रभियान चलाये।

७-४ हर पाठशाला ग्रपने मौहल्ले मे एक ज्योतिस्तम्भ के रूप में कार्य करे।

८. बच्चे को प्रारम्भिक शिक्षा उसकी मातृभाषा में दी जानी चाहिए तथा मिडिल स्तर तक की शिक्षा में उसको राष्ट्रभाषा के ग्रतिरिक्त ग्रन्य एक भाषणीक शिक्षा दी जानी चाहिये। उच्चतम शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा हो इसलिये हिन्दी भाषा को विज्ञान एव साहित्य से ग्रधिकाधिक समृद्ध किया जाना परम ग्रावश्यक है। विज्ञान के उच्चतम एव मूल ग्रन्थो को हिन्दी मे ग्रनुदित करने हेतु पतनगर कृषि विश्वविद्यालय की प्रणाली पर देश के प्रमुख विश्वविद्यालयो मे ग्रनुवाद एव प्रकाशन निर्देशालयो की स्थापना की जानी चाहिये जिससेविज्ञान ग्रादि विषयो की पुस्तको का हिन्दी मे ग्रभाव न हो। हिन्दी मे प्रकाशित श्रेष्ठ वैज्ञानिक साहित्य पर राष्ट्रीय एव प्रादेशिक स्तर पर साहित्य ग्रकादमिग्रो द्वारा पुरस्कार दिये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिये।

९. गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के जिस प्रकार सभी प्रकार के प्रशासनिक एव व्यवस्था सबधी कार्य गत ८० वर्षों से हिन्दी मे किये जाने की परम्परा है उसी तरीके पर देश के समस्त विश्वविद्यालयो मे एव विभिन्न सरकारी कार्यालयो मे समस्त प्रशासनिक कार्य हिन्दी या प्रादेशिक भाषाग्रों मे ही कराये जाने पर बल दिया जाना चाहिये।

१०. विश्वविद्यालय की शिक्षा केवल विषय की ग्रत्यधिक विशेषज्ञता प्राप्त करने हेतु जिज्ञासु छात्रो के लिये ही होनी चाहिये।

११. डिग्री के ग्राधार पर सेवाग्रो में नियुक्ति की प्रक्रिवा के स्थान पर उपार्जित योग्यता के ग्राधार पर विभिन्न सेवाग्रो मे ग्रथवा शिक्षा के उच्च सस्थानो मे नियुक्ति की जानी चाहिये। जिससे डिग्रिया लेने की होड को समाप्त किया जा सके। इसी से येन केन प्रकारेण डिग्री एवं डिविजन लेने की प्रवृति पर ग्रकुश लग सकेगा।

१२. वर्तमान परीक्षा प्रणाली के स्थान पर मूल्याकन का ग्राधार ग्रातरिक, वाह्य एव साक्षात्कार के ग्राधार पर नियत किया जाना चाहिये १०० पूर्णांकों मे से ग्रांतरिक मूल्यांकन के ३०, वाह्य के ५० तथा साक्षात्कार के २० ग्रक निर्धारित किये जाने चाहिये। १०० पूर्णांको में ग्रक देने के स्थान पर ग्रेडिग प्रणालो (क, ख, ग,) के प्रारुप मे लागू की जानी चाहिये। ग्राकस्मिक परीक्षायें भी बिना पूर्व सूचना के कराये जाने का प्रावधान होना चाहिये।

१३. शिक्षको एव छात्रो के हडताल एव सगठन ग्रादि बनाने पर ग्रविलम्ब प्रतिबध लगा दिया जाये। शिक्षण काय को ग्रावश्यक सेवाग्रो मे समाविष्ट किया जाना चाहिये।

१४ कम से कम वर्ष मे २०० दिन वास्तविक रूप से ग्रध्ययन ग्रध्यापन होना चाहिये।

१५ वर्तमान प्रचलित शिक्षा क्रम मे ग्रभिभावक की भूमिका को सबसे नगण्य रखा हुग्रा है जब कि शिक्षा के सारे व्यय की जिम्मेदारी उस पर है। छात्रो की ग्रनुशासन हीनता पर नियत्रण हेतु माता न पिता से सतत सम्पर्क स्थापित रखना चाहिये तथा ग्रधिकाधिक रूप से छात्र के ग्राचार, व्यवहार की रिर्पोट ग्रध्यापक द्वारा उसके पिता को विशेष कर जन्म-दात्री मा' को समय समय पर ग्रवगत कराते रहना चाहिये। बहुदा यह देखा गया है कि स्वरुप से उदण्ड शरारती छात्र भी माता पिता को सूचना दिये जाने पर सर्वाधिक भय खाता है। ग्रध्यापक भी छात्रो के व्यक्तित्व का समग्र विकास माता पिता की सहायता से ही करने की ग्रोर ग्रग्रसर हो सकते है। यही मातृमान पितृमान ग्राचायवान पुरूसो वेद् का वास्तविक स्वरुप है तीन महीने मे न्यूनतम एक बार ग्रभिभावक एव ग्रध्यापको की बैठक किया जाना समूची शिक्षा व्यवस्था का ग्रवि-

भाज्य अग माना जाना चाहिये ।

१६. इस समय समस्त देश मे शायद ही कोई विश्वविद्यालय हो जिसमे किसी स्तर पर भी किसी प्रबध परिषद मे अभिभावको को प्रतिनिधित्व दिया गया हो । शिक्षा के ढाचे मे अभिभावको की भूमिक्रिधिरको स्वीकार करते हुए शिक्षा सस्थानो की शिष्ट परिषदो मे समुचित प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिये ।

१७ जिस प्रकार गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालयो मे पचासो वर्षों तक छात्रो को कठोर निर्यमित जीवन का अभ्यासी बनाने हेतु व्रताभ्यास की परिपाटी प्रचलित रही है उसी आधार पर देश के समस्त शिक्षा सस्थानो मे छात्रो को नियमित कठोर जीवन का अभ्यासी बनाने हेतु प्रयत्न किया जाना चाहिये । वैदिक दृष्टिकोणो मे यही योग, तप एव ब्रह्मचर्य है । योगिक शिक्षा के इस आधान को स्वीकार करते हुए शिक्षा का अवि-भाज्य अग बना दिया जाये । प्रत्येक शिक्षाणालय मे योग के अनिवार्य शिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये । इस हेतु प्रत्येक विद्यालय मे योग शिक्षण का समुचिव प्रबध होना चाहिये ।

१८ समाज मे शिक्षा के प्रसार हेतु रेडियो, दूरदर्शन एव अन्य दृश्य, श्रव्य साधनो का व्यापक सुरुचिपूर्ण ढग से प्रयोग होना चाहिये ।

१९ प्रत्येक शिक्षणालयो मे शिक्षण कार्य से पूर्व सम्मिलित अग्निहोत्र करने की परिषाटी का विस्तार किया जाये तथा इसे पौराणिक कर्मकाड के रूप मे नही बल्कि पर्यावरण की शुद्धि हेतु प्रयोग किया जाये ।

२० शिक्षा नीति की समस्त श्रिति शिक्षक पर अवलम्वित है अत सर्वप्रथम देश के दस लाख शिक्षा शिक्षक वर्ग को शिक्षा के स्वोंस्तविकलक्ष्यो एव आदर्शो के अभ्यस्त करने शिक्षित किया जाना प्रथम आवश्यकता है । जिसके लिये निम्न सस्तुतिया दी गई है—

२०-१ शिक्षको को भी शिक्षित करने हेतु शिक्षा शास्त्री विद्वानो द्वारा सारे पाठ्यक्रम को निर्मित किया जाये ।

२०-२ देश के चुने हुए विद्यालयो, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों मे विभिन्न चरणों मे दो दो सप्ताह का शिक्षको को शिक्षित करने हेतु अल्पकालिक प्रशिक्षण कार्यशाला शिविर लगाया जाये।

२०-३ प्रत्येक शिक्षा सस्थान इन शिविरो के माध्यम से एक वर्ष मे २००० शिक्षकों को शिक्षित करने के व्यापक कार्यक्रम मे योगदान दे। तभी कही जाकर शिक्षा के आधार भूत सिद्धांत शिक्षक तक पहुच सकेगे क्योकि राष्ट्रीय शिक्षा के वही प्रहरी है।

—0—

इस पत्रिका मे जो लेख प्रकाशित किए गए है उनके विषय मे यह न समझा जाये कि उनमे निहित-विचारधारा सम्पादक की विचारधारा है अथवा सम्पादक उन विचारो से सहमत है। उनके विचारो की आलोचना मे जो लेख आएगे उनका भी समुचित आदर किया जायेगा।

—सम्पादक

नदी का दर्प

—कुमार हिन्दी*

नदी ने भगवान से कहा—
तूने मेरे इर्द गिर्द किनारे बाधकर
मुझे कैदी बना दिया है।
भगवान ने कहा—
अच्छा, बेटी लो मैने तेरे
किनारे तोड दिये।
किनारे टूटे,
नदी नाची,
उच्छृखल हुई,
तूफान आये,
तुगयानी आई,
नगर बरबाद हुये,
खेत उजडे,
जहा तहा जौहड बन गये,
बदबू पैदा हुई,
मच्छरो का आतक फैला।
मनुष्य चौंका,
उसने नदी को फिर बाधना शुरू किया।
अब नदी शीतल सलिल हो,
खेतो को निहाल करती है,
भूमि समसब्ज करती है,
ऊर्जा के भण्डार उत्पन्न करती है।
ससार का उपकार करती है।

[*कुमार हिन्दी"—सम्मानीय कुलपति श्रीमान् बलभद्रकुमार हूजा का काव्यगत उपनाम है। आपकी रचनाओ मे मानव-हृदय को प्रेरणा देने वाले श्रेष्ठ भाव रहते है। उनमे लक्षरण, व्यञ्जना भी होती है तथा उदात्त भावो का कोष भी।]

—सम्पादक

विश्वविद्यालय में इटली के हिन्दी-विद्वान का आगमन

दिसम्बर ११ अक्टूबर, १६८२ को इटली स्थित वेनस विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष डा० लक्ष्मण प्रसाद मिश्र पी-एच० डी०, डी० लिट० का शुभागमन हुआ। हिंदी-विभाग की ओर से उनके एक व्याख्यान का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता माननीय कुलपति महोदय ने की। प्रारम्भ मे विद्वान अतिथि का परिचय कराते हुए हिन्दी-विभागाध्यक्ष डा० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने उनका स्वागत किया तथा उनसे व्याख्यान हेतु प्रार्थना की। विद्वान प्रोफैसर डा० मिश्र ने अपने व्याख्यान के द्वारा इटली में हिन्दी-प्रचार की स्थिति से सभी को अवगत कराया। उन्होने बतलाया कि वहा के छात्रो मे हिन्दी सीखने की प्रबल अभिलाषा है। नागरी लिपि के सरल होने के कारण छात्रो को हिन्दी के उच्चारण एवं लेखन मे पर्याप्त सुगमता होती है तथा उसकी सरलता के कारण वे अन्य भाषाओ की अपेक्षा हिन्दी को सरलता से सीख लेते है। इटली मे भारतीय संस्कृति के प्रति महान् आस्था है तथा हिन्दी के कवियो मे भी वे तुलसी और मीरा के काव्य के प्रति अधिक रूचि रखते हैं। विद्वान प्रोफैसर ने यह भी बतलाया कि वे रामचरितमानस का इटली की भाषा मे रूपान्तर कर रहे है।

उनके विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान को विश्वविद्यालय के छात्रो एवं शिक्षको ने सुना तथा उनसे अनेक प्रकार के प्रश्न भी किये जिनका समुचित उत्तर उन्होने दे दिया।

अन्त मे उनके व्याख्यान के प्रति हिन्दी-विभागाध्यक्ष, आचार्य एव उपकुलपति तथा माननीय कुलपति महोदय की ओर से आभार व्यक्त किया गया।

इस विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष का सम्मान

मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण (Special Area Development Authority) चित्रकूट (जिसके अध्यक्ष अवकाशप्राप्त आइ० ए० यस०) भू० पू० कमिश्नर एव सेक्रेटरी लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट मध्यप्रदेश (श्री महेन्द्रप्रसाद सिह हैं) के तत्वावधान मे एक रामायण-महोत्सव का आयोजन दि० ११-११-८२ से दि० १४-११-८२ तक किया गया। इसमे देश भर के तुलसी-साहित्य-मर्मज्ञ विद्वानो के व्याख्यान हुए। इसमे भाग लेने वालो मे सर्वोच्च शासकीय अधिकारी, मत्रीगण एव विधान परिषद अध्यक्ष आदि भी थे। उस मच पर गुरुकुल कागडो विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष, डा० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट० के दो शोधपूर्ण व्याख्यान हुए। उनके प्रथम व्याख्यान मे ही ऐसा समा बधा कि लोगो ने कहा कि इस मच के सर्वश्रेष्ठ वक्ता डा० वाजपेयी है और उन्हे दूसरे व्याख्यान के हेतु पुन आमन्त्रित किया जाये। डा० वाजपेयी वैसे भी तुलसी पर डी० लिट० उपाधि का शोध-कार्य करने वाले सर्वोच विद्वानो में इस समय (सेवारत विद्वानो मे) सबसे पुराने हैं और उनका शोधकार्य मनोवैज्ञानिक है। उन्होने अपने अध्ययन की गम्भीरता का परिचय एक ऐसे महत्त्वपूर्ण मच पर देकर इस विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा मे अभूतपूर्व श्रीवृद्धि की है। इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र है। उन्हे हमारी अनन्त शुभकामनाए अर्पित है।

सहायक सम्पादक

सम्पादकीय वक्तव्य

'प्रह्लाद' पत्रिका का पुराना इतिहास है। इस पत्रिका का नामकरण तथा सर्वप्रथम प्रकाशन उन विद्वान आचार्य के द्वारा (सन् १६३१ मे) किया गया था जो अब इस ससार मे नही है, किन्तु जिनके आचार्यत्व से गुरुकुल कांगडी गौरवान्वित रह चुका है। वे स्वनामधन्य स्व० आचार्य गोवर्धन जी शास्त्री एम० ए० एम० ओ० एल० थे जिनकी कीर्ति-कौमुदी से यह सस्था आज भी जगमगा रही है। उन्ही के वरद पुत्र तथा भारती के अमर-साधक माननीय बलभद्रकुमार जी हूजा (अवकाश प्राप्त आई०ए०एस०) कुलपति, गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय से सभी परिचित है। उन्होने इस सस्था के सचालन का भार उस समय ग्रहण किया था जबकि यह डूब रही थी और अपने अथक परिश्रम त्याग और तपस्या के द्वारा आज उसे सर्वोच्च शिक्षा सस्थाओ के मध्य लाकर खड़ा कर दिया है। विगत कुछ वर्षो मे ही इस सस्था के अनुदान मे पर्याप्त वृद्धि हुई है।

"प्रह्लाद" शब्द अपने आप मे ही त्याग, उत्सर्ग, दृढता, साहस एव कर्तव्यपरायणता का प्रतीक है। आशा है प्रह्लाद के सद्गुणो को देश के सभी युवक ग्रहण करेगे।

इस कार्य को सुगम बनाने मे इस विश्वविद्यालय के सुयोग्य वित्त अधिकारी, श्रीमान् ब्रजमोहन जी थापर ने मुझे जो सहयोग प्रदान किया है उसकी जितनी अधिक प्रशसा की जाए कम है। उनकी सहायता के बिना इस पत्रिका का समय पर प्रकाशित हो पाना असम्भव था। इसके साथ ही कुल सचिव महोदय (डा० जबरसिह सेंगर) का भी बहुत सहयोग रहा है। अस्तु इनके प्रति आभार प्रकट करते हुए मुझे परम प्रसन्नता है।

श्रद्धेय सुरेशचन्द्र शास्त्री, प्रिसिपल राजकीय आयुर्वेदिक कालेज गुरुकुल कागडी श्री सुरेशचन्द्र जी त्यागी, प्रिसिपल विज्ञान महाविद्यालय, डॉ० सत्यदेव कोहली तथा श्री जितेन्द्र जी, सहायक मुख्याधिष्ठाता, गुरूकुल कागडी एव श्री चन्द्रशेखर त्रिवेदी, उप कुल सचिव के प्रति आभार प्रगट करना भी अपना

कर्तव्य समझता हू।

आचार्य रामप्रसाद जी इस पत्रिका के सरक्षक है तथा माननीय कुलपति जी प्रधान सरक्षक हैं। ये तो इस पत्रिका के प्रमुख प्रेरणा-स्रोत हैं अत. इनसे उऋण हो पाना कठिन है। इन्हें धन्यवाद देना मात्र औपचारिकता होगी।

कुछ ऐसे सज्जन भी हैं जो मित्र, परामर्शदाता अथवा सहायक सम्पादक हैं। वे सभी धन्यवाद के पात्र है।

पत्रिका मे जो त्रुटिया है उन सबका उत्तरदायित्व मुझ पर है अस्तु मैं उनके लिए क्षमा प्रार्थी हू।

यदि इस पत्रिका के द्वारा पाठकों का लेशमात्र भी अनुरजन हो सका तो मेरा प्रयास सफल है।

उक्त निवेदन के साथ सभी पाठको को सन् १९८३ के नव-वर्ष की मगल कामनाए अर्पित हैं।

—सम्पादक

परामर्शदात्री-समिति

१. सदाशिव भगत — अध्यक्ष, अंग्रेजी-विभाग

२. ओमप्रकाश मिश्र — ,, मनोविज्ञान विभाग

३. विजयपाल सिंह — ,, गणित विभाग

४. डॉ० विनोदचन्द्र सिनहा — ,, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग

५. डॉ० निगम शर्मा — ,, संस्कृत विभाग

६. डॉ० जयदेव विद्यालंकार — कार्यवाहक अध्यक्ष, दर्शन-विभाग